हमारा भोजन

श्री प्रभाकर साहित्यालोक
रानीकटरा, लखनऊ।

3733 ① human foods
② nutrients ③ human diet
④ meal ⑤ human nutrition
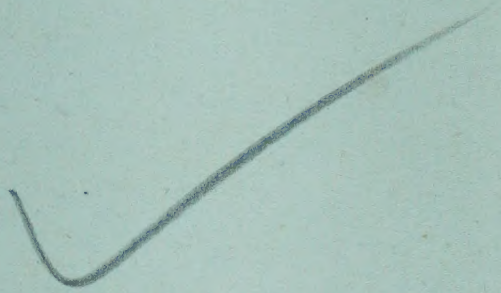
हमारा भोजन

(आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बी एकेडेमी, यू.पी. द्वारा पुरस्कृत)

लेखक

श्री ज्ञानेन्द्रनाथ शुक्ल, बी.ए.ए. एम.एस. का० वि० वि०

हिन्दी साहित्य सुधाकर

भूतपूर्व प्रिंसिपल, कान्यकुब्ज आयुर्वेदिक कॉलेज, लखनऊ,

डिविजनल आयुर्वेद अधिकारी (H. Q.) स्टेट मेडिकल

सर्विस (आयुर्वेद), उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

रानीकटरा, लखनऊ

प्रकाशक
श्री प्रभाकर साहित्यालोक
रानी कटरा, लखनऊ

द्वितीय संस्करण २००० प्रति
१५ मार्च, १६५६
मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक
नव-भारत प्रेस
नादान महल रोड, लखनऊ

दो शब्द

भारतीय चिकित्सा परिषद्, उत्तर प्रदेश ने 'हमारा भोजन' नामक मेरी पुस्तक को बहुत समय से बी० आई० एम० एस० के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर रखा था। राजकीय आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बी एकेडेमी उत्तर प्रदेश ने इसे पुरस्कृत कर विशेष सम्मान प्रदान कर दिया। पुस्तक की उपयोगिता इसी से प्रमाणित है कि तमाम राज्यों ने राजकीय स्वीकृत-पुस्तक सूची में 'हमारा भोजन' को सम्मिलित किया है।

पुस्तक के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन इतनी शीघ्रता में हो रहा है कि उसमें अमूल परिवर्तन का अवसर नहीं है। यत्र-तत्र संशोधन कर दिया गया है। इसके प्रकाशन का सारा श्रेय श्री प्रभाकर साहित्यालोक लखनऊ को है जिनकी प्रेरणा व परिश्रम से ही यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

—ज्ञानेन्द्रनाथ शुक्ल

विषय-सूची

	विषय			पृष्ठ
१.	विषय प्रवेश	....	....	१५
२.	प्रोटीन	....	....	१६
३.	कार्बोहाइड्रेट	....	....	२४
४.	वसा	....	....	२८
५.	विटामिन	....	....	३५
६.	भोजन की मात्रा	....	....	४०
७.	आहार का पाचन तथा शोषण		...	४६
८.	जान्तव वर्ग	....	....	५८
९.	वनस्पति वर्ग	....	....	६७
१०.	मसाले तथा आचार	....	....	८४
११.	पानक वर्ग	....	....	८६
१२.	भारतीय आहार तालिका	....	....	९६
१३,	आहार सम्बन्धी रोग	....	....	१०७

—:o:—
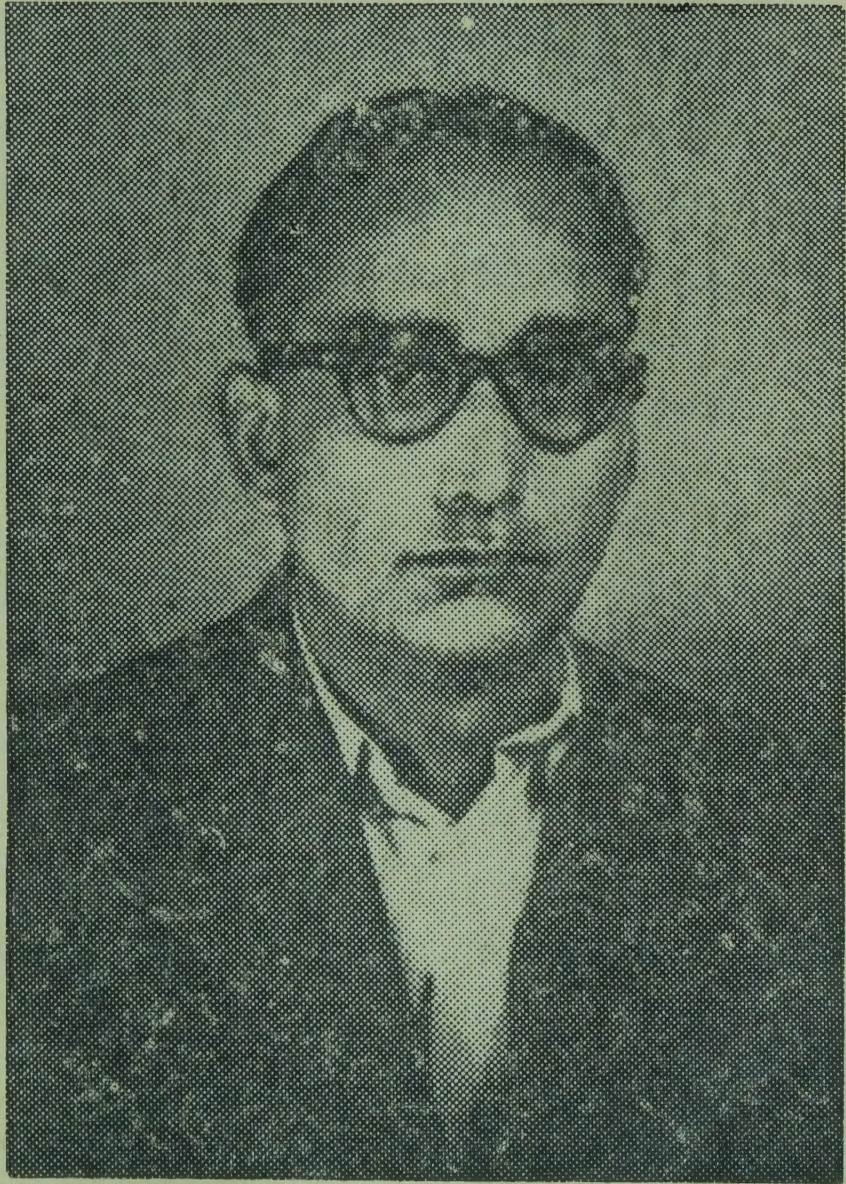
डा० ज्ञानेन्द्र नाथ शुक्ल

ए० एम० एस०, आयुर्वेदाचार्य

भूमिका

हमारे सम्मुख आज जो आहारविज्ञान का इतिहास आता है वह हमें बतलाता है कि जीवनीयों (Vitamins) की खोज इकमान (Eijkman) के प्रयोगों के फलस्वरूप हुई; प्राणियों तथा उद्‌भिजों (Plants) के लिये आवश्यक विभिन्न खनिज लवणों (Mineral Salts) की उपयोगिता का परिचय मैक्कॉलम (McCollum) ने दिया; बानेडिक्ट (Banedict) तथा हिण्डहेडे (Hindhede) ने विज्ञान-संसार के सामने अग्निमात्रा (Fuel Units या Calories) का सिद्‌धान्त रक्खा; चिटेण्डेन (Chittenden) ने यह बतलाया कि भोजन में प्रभोज्यों (Proteins) की मात्रा न्यून रहने से मानव-शरीर को किस प्रकार और क्या लाभ हो सकते हैं; लस्क (Lusk) तथा रूबनर (Rubner) प्रभृति आहारविज्ञान के विशेषज्ञों ने मांसाहार की अनुपयुक्तता का निर्देश किया; मैक्केरिसन (McCarrison) ने विभिन्न भारतीय भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्वों का मूल्यांकन किया, हे (Hay) ने हमारा ध्यान भोज्यांशों के वाञ्छित योगों (Combinations) तथा उनके सन्तुलन (Balanced Diet) की ओर आकर्षित किया, आदि, आदि।

हम भी आहारविज्ञान सम्बन्धी कोई भी पुस्तक उठा कर देखते हैं तो उसमें स्थान-स्थान पर प्रभोज्यों, कुकिलापों (Carbohydrates), वसाओं (Fats), जीवनीयों तथा अग्निमात्रा आदि का इतना अधिक उल्लेख, विस्तार तथा वर्णन पाते हैं कि हमारी यह धारणा बँधने लगती है कि आहारविज्ञान-विषयक जो भी वैज्ञानिक तथा गवेषणात्मक साहित्य है वह सब पाश्चात्य वैज्ञानिकों की ही देन है। हम भूल जाते हैं कि इन दो-चार आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक नामों के स्थान

पर यदि इनके द्वारा निर्देशित वस्तुओं के प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक पर्याय दे दिये जायँ, इनका वर्णन पाश्चात्य वैज्ञानिक ढंग से न कर के प्राचीन भारतीय ढंग को आधुनिकता का रूप देते हुये किया जाय, तथा विभिन्न पोषक तत्वों के योगों का निरूपण योरोप की नहीं वरन् भारत की जलवायु, भारतीय रहन-सहन एवं भारतीयों की शारीरिक आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से किया जाय तो आहार-विषयक सारा पाश्चात्य ज्ञान ऐसा प्रतीत होगा मानों भारतीय आहार-ज्ञान के कुछ यत्र-तत्र बिखरे हुये कण बीन कर प्रकाश में ला दिये गये हों। उदाहरण के लिये सर रॉबर्ट मैक्केरिसन के 'आहारशास्त्र का मूल सिद्धान्त' ('Prime Nutrition Law') कहे जाने वाले नियम को ही ले लीजिये, जिसे कि हम आहार-सम्बन्धी लगभग सभी आधुनिक ग्रन्थों में एक-न-एक स्थान पर मोटे-मोटे अक्षरों में अवश्य उद्धृत पाते हैं—

'The right kind of food is the most important single factor in the promotion of health; and the wrong kind of food is the most important single factor in the promotion of disease."

अर्थात्—'मनुष्य के स्वास्थ्य की उन्नति के लिये जो एक ही प्रमुख साधन है वह है उपयुक्त आहार का उपयोग; अहितकर आहार का उपयोग व्याधियों (शारीरिक क्लेशों) की वृद्धि के लिये एक ही प्रमुख कारण है।'

यदि हम कहें कि मैक्केरिसन का उपर्युक्त नियम उनके जन्म से सहस्राब्दियों पूर्व कहे गये भगवान् आत्रेय के निम्नलिखित सूत्र का केवल शब्दानुवाद भर ही है तो यह सत्य ही होगा—

"हिताहारोपयोगः (The right kind of food) एकएव (The most important single factor) पुरुषस्य अभिवृद्धि (Promotion of health) करोभवति, अहिताहारोपयोगः (Wrong

kind of food, when used) पुनर्व्याधीनां (Promotion of disease) निमित्तमिति (is the...........single factor)."

हमारी इस धारणा की पुष्टि इस बात से और हो जाती है जब हम मैक्केरिसन, मेच्निकॉफ़ (Metchnikoff), चिटेण्डेन आदि पाश्चात्य आहारशास्त्रज्ञों को भारतीय आहारविज्ञान का वर्षों अध्ययन करने के उपरान्त उसकी वैज्ञानिकता की प्रशंसा करते हुये पाते हैं, उन्हें इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते हुये पाते हैं कि भारतीय आहारशास्त्रविदों को पोषक-तत्वों के सन्तुलन (Balancing of Diet) का इतना वैज्ञानिक, इतना विवेचनात्मक तथा इतना उत्तम ज्ञान—और वह भी अब से शताब्दियों पूर्व—कैसे था जिसमें कि आधुनिक वैज्ञानिक कोई नई बात जोड़ नहीं पाते, हाँ ! अपने नित्य के नवीन प्रयोगों द्वारा उनके सिद्धान्तों की परिपुष्टि तथा उनके नियमों की सिद्धि दिन-प्रति-दिन अवश्य करते जाते हैं।

वास्तव में आहारविज्ञान जैसे परमावश्यक विषय पर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करने की ओर ध्यान देने की आवश्यकता पाश्चात्य वैज्ञानिकों को अभी पिछली कुछ दशाब्दियों में ही प्रतीत हुई है। क्राइल (Crile), फ्रीडेनबेर्ग (Friedenberg) तथा कार्लसन (Carlson) प्रभृति योरोपीय विद्वान अपने क्रियात्मक प्रयोगों के परिणामस्वरूप इस तथ्य पर अब पहुँचे हैं कि आहार के उचित अनुपान से केवल किन्हीं व्याधियों का परिहार तथा निराकरण ही नहीं किया जा सकता वरन् उससे जीवन की अवधि में भी वृद्धि की जा सकती है, जब कि भारतीय आहारविज्ञानवेत्ता इस बात से शताब्दियों पहले भी अवगत थे जैसा कि हमें महर्षि चरक के निम्न सूत्रों से प्रतीत होता है—

"बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः ।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा ॥ ३३७ ॥

षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः ।
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा संमतः सताम् ॥ ३४३ ॥"

—'चरकसंहिता,' सूत्रस्थानम्, अध्याय २७

अर्थात्—'बल (Strength), आरोग्य (Sound health), आयु (Longevity) तथा प्राण (Life energy), यह सब अग्नि (Vitalizing current) पर निर्भर हैं। अन्न (Food) तथा पान (Drinks) रूपी ईंधन (Fuel) से यह अग्नि प्रदीप्त रहती है अन्यथा शान्त हो जाती है। जो पुरुष जितेन्द्रिय (Abstinent) है तथा सदैव हितकर भोजन (Right kind of food) करता है वह (अपने उत्तम स्वास्थ्य के लिये) सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित होता हुआ ३६,००० रात्रियों (अर्थात् १०० वर्षों) तक निरोग रह कर जीवित रहता है।"

अब हम कैसे मान लें कि रोग-परिहार तथा दीर्घजीवन का आहार से सम्बन्ध निर्धारित करनेवाले इस सिद्धान्त के जनक महर्षि चरक नहीं वरन् क्राइल या कार्लसन हैं? योरोपीय वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर अब पहुँच रहे हैं कि भोजन में वाञ्छित परिवर्तन करने से मनुष्य के चरित्र में भी परिवर्तन किया जा सकता है, परन्तु क्या हमारे यहाँ सभी स्थानों में, सभी लोगों के हाथों, सभी प्रकार का अन्न ग्रहण कर लेने पर लगे हुये प्रतिबन्ध इस बात का निर्देश नहीं करते कि हमें इस सिद्धान्त का ज्ञान सहस्राब्दियों पहले भी था? महर्षि चाणक्य का ही कथन है कि 'जो जैसा अन्न खाता है उसके वैसे ही विचार उत्पन्न होते हैं जैसे दीपक अन्धकार का भक्षण करता है और काजल उगलता है'। 'मनुस्मृति' के चतुर्थ अध्याय में श्लोक २०५ के आगे के श्लोकों में किसके अन्न का क्या प्रभाव होता है इसकी पर्याप्त विशद व्याख्या की गई है। और फिर युधिष्ठिर के यज्ञ में आये हुये चूहे की कथा भी तो इसी बात की पुष्टि करती है।

बानेडिक्ट (Banedict) तथा हिण्डहेडे (Hindhede) ने अभी कुछ ही वर्ष हुये अग्निमात्रा (Fuel Units या Calories) के सिद्धान्त को वैज्ञानिक संसार के सम्मुख रक्खा है। उन्हें अब इस बात का पता चला है कि किसी भी व्यक्ति की शक्तियों की उचित रूप में क्षतिपूर्ति करते रहने के लिये चौबीस घण्टे में उसके लिये कितना भोजन आवश्यक है। इस भोजन की मात्रा वह इस भोजन रूपी ईंधन (Fuel) से प्राप्त हो सकने वाली अग्नि की मात्रा (Calories) में देते हैं। वास्तविकता की खोज करने पर हम यह देखते हैं कि इस भोजन रूपी ईंधन से उत्पन्न होने वाली अग्निमात्रा की कल्पना आधुनिक वैज्ञानिकों की नहीं वरन् महर्षि चरक की है —

"हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः।
अन्नपानसमिद्भिर्ना मात्राकालौ विचारयन्॥"

—'चरक संहिता', सूत्रस्थानम् अ० २७, सू० ३४०

अर्थात्—"मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह मात्रा तथा समय का विचार करता हुआ सावधानी के साथ हितकारी अनुपान की समिधियों से जठराग्नि में होम करता हुआ उसे प्रदीप्त रक्खे।"

ध्यान के साथ अर्थ लगाने पर स्पष्ट हो जाता है कि यहां अग्निमात्रा का अर्थ पाश्चात्य वैज्ञानिकों की Fuel Units अथवा Calories से ही है। फिर, पाश्चात्य वैज्ञानिक अब कहने लगे हैं कि किसी भी व्यक्ति के लिये आवश्यक आहाराग्नि की मात्रा का कम या अधिक होना उसकी अवस्था, उसके स्वास्थ्य, उसके आरोग्य, उसके जीविकोपार्जन के ढंग और फिर ऋतु, काल आदि पर निर्भर करता है; वह अब कहने लगे हैं कि इन बातों का ध्यान न कर यदि हम किसी भी व्यक्ति को ऐसा भोजन देते हैं जिससे उसके शरीर में आवश्यकता से अधिक अथवा आवश्यकता से कम अग्नि उत्पन्न होती है तो उसकी शारीरिक क्रियाओं में असामञ्जस्य उत्पन्न हो जाता है और वह निरोग

नहीं रह पाता, परन्तु यदि हम 'चरकसंहिता' का ही सूत्रस्थान, अध्याय १८ तथा विमानस्थान, अध्याय २, ध्यानपूर्वक पढ़ें तो हमें पता चलता है कि हमारे आयुर्वेद के आचार्यों ने इन सिद्धान्तों की प्रतीति बहुत पहले ही कर ली थी। उन्होंने इन सिद्धान्तों के अनुसार भोजन की जो व्यवस्था की थी उसकी उत्तमता तथा अपूर्वता का अनुमान लगाते हैं हम उस समय जब हम अपने प्राक्ऐतिहासिक ग्रन्थों में पढ़ते हैं कि प्राचीन भारत के बच्चे सिंहनियों के दाँत गिनते थे, पुरुष मस्त हाथियों के साथ लड़ते थे तथा स्त्रियाँ युद्धभूमि में रथ के पहिये को रोकने के लिये कील के स्थान पर अपनी अँगुली अटका देती थीं।

आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर अब कहने लगे हैं कि मनुष्य की पाचन-प्रणाली के लिये मांसाहार उपयुक्त नहीं है; शाकाहार अथवा फलाहार की अपेक्षा मांसाहार से कहीं अधिक रोग मानव-शरीर में उत्पन्न होते हैं; वह अब इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि कम मात्रा में प्रोटीन खाने वाले तथा मांसाहार को त्याज्य समझने वाले व्यक्तियों की शरीरक्षमता (Endurance) अधिक प्रोटीन खाने वाले तथा मांसाहारी व्यक्तियों की शरीरक्षमता से बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है। केलॉग (Kellogg) तथा उनके साथी वैज्ञानिक अब ऊँचे शिखरों पर चढ़ कर चिल्ला रहे हैं—मेरा तात्पर्य है कि रेडियो पर ब्रॉडकास्ट कर रहे हैं—कि मनुष्य को यथा-सम्भव मांसाहार से बचना चाहिये; यदि उसे अपने को दीर्घजीवी बनाना है, यदि उसे अपनी पाचन-प्रणाली की शक्तियों को बहुत जल्दी ही क्षीण नहीं कर डालना है तो उसे घी, दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, हरे शाक तथा फल आदि पर उतर आना चाहिये। आयुर्वेदशास्त्रज्ञों ने, हम देखते हैं कि, यद्यपि लिखे सभी मांसों के गुण विस्तारपूर्वक हैं ('चरकसंहिता', सूत्रस्थान, अध्याय २७, सूत्र ३३-८३) परन्तु अन्त में मनुष्य को शाकाहारी प्राणी ही माना है और अन्न की ही महिमा गाई है। यदि मैक्केरिसन ने कहा है कि—

A diet consisting of any staple grain with milk., milk Products, and green leafy vegetables contains not only the right kind and amount of proteins but everything else the body needs for health, strength, anb well-being."

अर्थात् —'दूध, घी, दही, मट्ठा, मक्खन तथा ताजे हरे शाकों के साथ किसी भी एक प्रमुख धान्य का भोजन न केवल उचित रूप तथा उपयुक्त मात्रा में प्रभोज्यों से युक्त होता है वरन् वह समस्त पोषक तत्व भी रखता है जिनकी कि स्वास्थ्य, बल, तथा सुरक्षा के लिये मानव-शरीर को आवश्यकता होती है।" तो भारतीयों के भोजन की निम्न व्यवस्था की वैज्ञानिक गुरुता को मानते हुये ही कहा है—

सूर्योदय से पूर्व—एक ग्लास ताजा और ठण्ढा जल।

प्रातःकालः —मक्खन, मिश्री तथा दूध या दो आँवलों (के मुरब्बे) के साथ दूध।

दोपहर के भोजन में—घर के पिसे आटे की रोटियाँ, दाल, एक या दो हरे शाक, घी, दही या मट्ठा, तथा मूली, हरी धनियाँ, या पुदीना।

तीसरे पहर—फल तथा दूध।

रात्रि का भोजन—दोपहर का सा ही परन्तु सुपाच्य, हल्का और शीतप्रधान वस्तुओं (जैसे दही, मूली आदि) से रहित।

मसालों को पाश्चात्य वैज्ञानिक अब हानिकारक बतलाने लगे हैं। भारतीय आहारशास्त्रविदों का ऐसा मत शताब्दियों पूर्व था। वह स्वास्थ्य की उन्नति करने की अभिलाषा करने वाले के लिये धीरे-धीरे 'एलाजातिलवंगं च' को भी छोड़ देने की राय देते थे ('घेरण्ड संहिता', उपदेश ५, सूत्र २८)। वियना के प्रोफेसर डाक्टर सी० फॉन नूरडेन (Prof. Dr. C. Von Noorden) का मत है कि अनेक रोगों की प्रदाहक अवस्था में नमक का भोजन अहितकर है। नमक की अनुपस्थिति

में रक्त द्वारा कैल्शियम का ग्रहण सरलता के साथ होता है जो कि नाड़ी-मण्डल के लिये स्वास्थ्यकर होता है। महर्षि दत्तात्रेय का भी मत हम यही पाते हैं कि नाड़ी-मण्डल के नियन्त्रण का अभ्यास करने वाले योगियों के लिये—

"..... । लवणं सर्षपं चाम्लमुग्रं तीक्ष्णं च रूक्षकम् ॥
अतीव भोजनम् त्याज्यमतिनिद्रातिभाषणम् ।.... ।"

अर्थात्—"नमक, सरसों, अम्ल, उग्र, तीक्ष्ण, रूखा तथा अधिक भोजन, अत्यन्त निद्रा तथा अधिक भाषण ये त्याज्य हैं।'

इन सब बातों को देखते हुये भी हम कैसे मान लें कि आहार-शास्त्र विषयक जितनी भी तथ्यपूर्ण गवेषणायें हैं वह सब पाश्चात्यों ने कीं। यदि पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा में पले हुये हमारे बन्धु—जिनकी कि आँखें पाश्चात्य वेष-भूषा, पाश्चात्य आहार-विहार तथा पाश्चात्य चमक-दमक से चकाचौंध हो रही है—अपने भारतीय ग्रन्थों का मनन करने का कष्ट करें तो वह देखेंगे कि भारतीय आरोग्य-शास्त्रों में निर्धनों को ठगने और उनके जीवन के साथ खेल करने वाली मामूली पत्तियाँ ही नहीं वरन् वह अमूल्य रत्न हैं जिनका मोल उनके नाम बदल कर तथा उन्हें अपने द्वारा प्रकाशित बतला कर पाश्चात्य वैज्ञानिक संसार हमारी श्रद्धा तथा हमारी पूजा का पात्र बनने का प्रयत्न कर रहा है।

मेरे सामने आहारविज्ञान-सम्बन्धी यह विषय लगभग पिछले दो वर्षों से था, परन्तु मेरा साहस न हुआ एक ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करने की अनधिकार चेष्टा करने का जिसमें कि मेरी गति नहीं, तथा जो मेरा अपना विषय नहीं। मैंने स्थानीय कान्यकुब्ज आयुर्वेदिक कॉलेज के प्रिंसिपल तथा अपने आदरणीय बन्धु आयुर्वेदाचार्य श्रीमान् पण्डित ज्ञानेन्द्रनाथ जी शुक्ल से इस बात का अनुरोध किया कि वह आहार के विषय की वह समस्त ज्ञातव्य बातें संक्षिप्त रूप में जन-साधारण के सम्मुख रक्खें जो कि उनके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकें। पुस्तक-प्रणयन

की ओर उनका यह प्रथम पग था इसी कारण वह बराबर हिचकते से रहें परन्तु अन्त में उन्हें मेरा अनुरोध स्वीकार ही करना पड़ा । और इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक जनता के सामने आ सकी । मैंने उनके इस प्रथम प्रयास का अभिनन्दन किया । आशा है कि हमारे ज्ञानेच्छु पाठक भी इससे पूर्ण लाभ उठायेंगे ।

डाइरेक्टर, हिन्दी पब्लीकेशन्स
योग इन्स्टीट्यूट, बम्बई
कार्तिक शुक्ल ११, सं० २००३

—"अमर"
एम० एस-सी०

हमारा भोजन

अध्याय १

विषय प्रवेश

यह कलयुग है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने रेल, मोटर अथवा वायुयान का अनुभव न प्राप्त किया हो। रेल का इंजन हजारों मन सामान एवं सहस्रों यात्रियों को एक साथ बड़ी तीव्र गति से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता है। मोटरें भी अपनी शक्ति के अनुसार इधर से उधर दौड़ती हुयी मानव जीवन को सुलभ बनाती हैं। वायुयान ने तो यात्रा को और भी सुगम बना दिया है। सहस्रों मील की यात्रा इसके द्वारा घंटों में समाप्त की जाती है। यह सभी मशीनें एक प्रकार की यांत्रिक शक्ति द्वारा परिचालित की जाती हैं। यह शक्ति इन्हें पत्थर के कोयले या पेट्रोल के द्वारा प्राप्त होती है। रेल के इंजन अथवा मोटर के इंजन में इस कोयले अथवा पेट्रोल का ज्वलन होकर शक्ति का निर्माण होता है। जिसके द्वारा इतनी बड़ी रेल को खींचने की शक्ति इंजन को प्राप्त होती है।

इस प्रकार मानव शरीर भी एक मशीन है। इस शरीर में वे सभी क्रियायें होती रहती हैं जो एक मशीन द्वारा सम्पादित की जाती हैं, किन्तु इस ईश्वरीय मशीन तथा मानव निर्मित मशीन में आकाश पाताल का अन्तर है। जहाँ हम जीवित शरीर को एक ईश्वरकृत सम्पूर्ण मशीन (यन्त्र) कह सकते हैं, वहाँ मनुष्य द्वारा निर्मित मशीनों में अभी अनेक त्रुटियों का प्रति दिन अनुभव होता जाता है। मशीनों के संचालन के लिये उनसे सम्बन्धित ज्ञान रखने वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती

है, स्वतन्त्रता का अनुभव उन्हें किंचितमात्र नहीं होता है। गतिमान अथवा अन्य कार्यों की समता रखते हुये भी मशीनें जीवित नहीं कही जा सकतीं। इनमें जीवन के कोई भी लक्षण नहीं पाये जाते हैं। न मशीनों में वृद्धि होती है, न सन्तानोत्पादन की क्षमता ही रहती है। किन्तु इसके प्रतिकूल शरीर की जीवित परिभाषा है। यह स्वयं ही संचालित एवं नियन्त्रित होता है। किसी अन्य प्राणी की इसे आवश्यकता नहीं। शरीर जो भोजन प्रति दिन ग्रहण करता है उसी से अपना पोषण तथा वृद्धि करता रहता है। निश्चित समय की प्राप्ति पर अपने समान ही अनेक प्राणियों (सन्तानों) की उत्पत्ति करके सृष्टि को आगे बढ़ाता है। यह सभी कार्य जीवित प्राणी के लक्षण कहे जाते हैं, और जीवित प्राणी में देखे भी जाते हैं। मशीनों में इनका नितान्त अभाव होता है।

इञ्जन को जिस प्रकार कोयले पानी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्राणी जीवन के अन्तिम क्षण तक कुछ-न-कुछ कार्य करता ही रहता है। इस निरन्तर कार्य करने के कारण शरीर की धातुयें तथा शक्ति का बराबर नाश होता रहता है। प्रत्यक्ष रूप से भी शरीर के विभिन्न भागों द्वारा मल के रूप में विसर्जित की हुई अनेक वस्तुओं द्वारा शरीर का नाश होता रहता है।

क्षतिपूर्ति

जब शरीर इस प्रकार निरन्तर क्षय होता रहता है तो कुछ काल में शरीर को नष्ट हो जाना चाहिये, किन्तु अनुभव इसके विपरीत होता है। प्राणी क्षीण होकर शीघ्र ही नष्ट नहीं हो जाता वरन् अधिक काल

पञ्चभूतात्मके देहे ह्याहारः पाञ्चभौतिकः।
विपक्वः पञ्चधा सम्यक् स्वान् गुणानभिवर्धयेत् ॥
(सु०-सू० ४६-५२६)

तक जीवित रहता है। कारण यह कि शरीर का निरन्तर क्षय भोजन के कारण पूर्ण होता रहता है, अर्थात् प्राणियों द्वारा आहार रूप में लिये गये पदार्थों द्वारा शरीर के नष्ट हुये धातु तथा अन्य पदार्थ बराबर पूरित होते रहते हैं।

वृद्धि

प्राणी अपना जीवन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से प्रारम्भ करता है, किन्तु कुछ ही काल में शनैः-शनैः अपनी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करके अपनी प्रारम्भिक अवस्था के आकार का चालिस या पचास गुणा अधिक हो जाता है। इस परिवर्तन का क्या कारण है? यही अवस्था वृद्धि की कही जाती है। छोटा बालक जो दूध, अन्न आदि पदार्थ भोजन रूप में ग्रहण करता है वह ऐसी मात्रा में होते हैं कि उसमें निरन्तर होने वाले क्षय की पूर्ति के साथ-ही-साथ अङ्गों एवम् धातुओं की वृद्धि करते जाते हैं। यही कारण है कि अत्यन्त छोटा बालक कुछ समय के बाद एक हृष्ट-पुष्ट युवा के रूप में बदल जाता है।

सञ्चय

प्रायः देखने में आता है कि कुछ प्राणी आवश्यकता से अधिक मोटे-ताजे तथा हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हैं। इनमें निरन्तर होते रहने वाले क्षय तथा वृद्धि बराबर रखने वाली मात्रा से कहीं अधिक भोजन ग्रहण किया जाता है, जिसके फलस्वरूप बचा हुआ अंश विभिन्न रूपों में विभिन्न तन्तुओं में एकत्रित रहता है जो आवश्यकता पड़ने पर काम में लाया जाता है।

ताप

प्राणियों के निरन्तर कार्य करते रहने के कारण शारीरिक धातुओं के क्षय के साथ-ही-साथ शरीर में स्थिर स्वाभाविक ताप का भी ह्रास होता रहता है। यदि इसकी पूर्ति न हो तो एक समय ऐसा हो सकता है जब प्राणियों का शरीर बर्फ की नाईं तापरहित हो जाय।

किन्तु अनुभव इसके प्रतिकूल है। शरीर के ताप की पूर्ति भी इसी भोजन द्वारा ही होती है।

विभिन्न प्रयोगों द्वारा इस बात का निश्चय हो चुका है कि प्राणी का शरीर सृष्टि में पाये जाने वाले कुछ रासायनिक तत्वों यथा कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैलशियम, गन्धक, लौह आदि के योग से बना है अतः जीवित शरीर में रासायनिक तत्वों को आवश्यकतानुसार उनके निकटतम स्वरूप में ग्रहण करना ही भोजन कहा जा सकता है।

जो भी भोज्य पदार्थ प्राणी द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं वे निम्न तालिका के अनुसार हैं :—
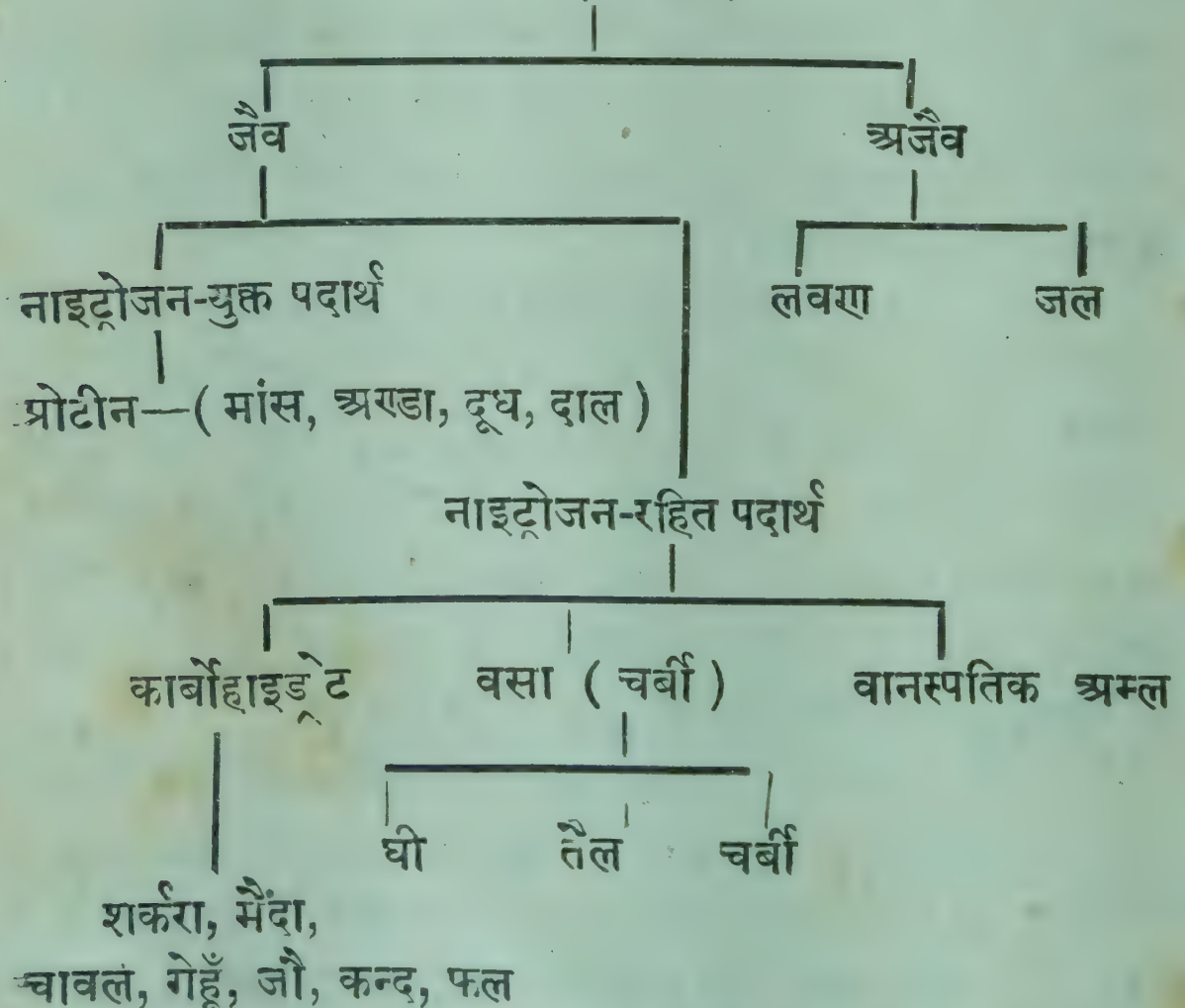
इनके अलावा भी शरीर के संगठन के लिये कुछ अन्य

आवश्यक वस्तुयें हैं जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से वे आवश्यक हैं, यथा जीवनीय द्रव्य (Vitamins), सूर्य प्रकाश तथा ताप आदि।

द्वितीय अध्याय

प्रोटीन

मांसं बृहणीयानां रसस्तर्पणीयानां (श्रेष्ठः)
(च०सू० २५-४०)

यह मांस-जातीय पदार्थ है। शरीर की मांस-पेशियों का बहुत बड़ा भाग इसी के द्वारा बनता है। इसके निर्माण में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, गन्धक, फास्फोरस आदि तत्व भाग लेते हैं, किन्तु नाइट्रोजन तत्व का मुख्य स्थान होता है। प्रयोग द्वारा प्रोटीन का अणु विश्लेषित करके निम्न मात्रा में विभिन्न तत्व प्राप्त किये गये हैं:—कार्बन ५४; हाइड्रोजन ४, ऑक्सीजन २२; नाइट्रोजन १६; गन्धक १।

	Serum Albumin	Egg Albumin	Serum Globulin	Cow Milk Casseinogen.	Gelatine	Keratin of Horse Hair	Edestin of Cotton Seed	Zein of Maize	Gliadin of Wheat
Glycine ...	x	x	3·5	x	25·5	4·7	3·8	x	·02
Leucine ...	20·0	6·1	18·7	10·5	7·	7·1	2·9	18·6	5·6
Glutamic Acid ...	7·7	8·0	8·5	21·8	5·8	3·7	17·2	26·2	43·7
Tyrosine ..	2·1	1·1	2·5	4·5	x	3·2	2·1	3·5	1·2
Arginine ...	4·9	2·1	3·9	3·8	7·6	—	11·7	1·2	3·2
Typtophan ..	x	x	x	1·5	x	...	—	x	1·0
Cystine ...	2·5	·3	6·7	·06	—	more than 10	·2	—	·4

ऊपर तालिका में प्रदर्शित किया गया है कि विभिन्न द्रव्यों में प्रोटीन की कितनी मात्रा तथा कौन-सा प्रोटीन है।

प्रोटीन के कार्य

१—शरीर के निरन्तर कार्य करते हुये अंगों की क्षति को पूर्ण करना तथा उनकी वृद्धि करना।

२—शरीर के पाचक रस तथा अन्य रस इसी की सहायता से बनते हैं।

३—शरीर द्वारा ऑक्सीजन के ग्रहण तथा उसके उपयोग में प्रोटीन प्रधान सहायता प्रदान करती है।

४—आवश्यकता होने पर कार्बोहाइड्रेट के शक्ति-उत्पादन कार्य को संपादित करती है।

५—कुछ विद्वानों का मत है कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा के रूप में परिणत होकर भी कार्य करती है।

संसार में प्रोटीन वाले पदार्थ असंख्य हैं, किन्तु सभी द्रव्यों में प्रोटीन समान रूप से नहीं पायी जाती है। सुविधा के लिये निम्न वर्गीकरण दिया जाता है :—

१—आवश्यक मात्रा वाले भोज्य पदार्थ—दूध तथा उसके विकार (दही, मक्खन) अण्डा, मांस, वृक्क, मछली, हरे शाक, सब्जी।

२—साधारण मात्रा वाले भोज्य पदार्थ—गेहूँ का आटा, यव, चावल, मटरदाल, चना, आलू, शलजम, गाजर, साबूदाना, फल, शाक।

३—कम मात्रावाले भोज्य पदार्थ—पालिश किया हुआ चावल, आटा, मक्का।

रासायनिक संगठन को दृष्टि में रखकर प्रोटीन का विभेद

किया गया है। यह विभेद पूर्ण तो नहीं कह सकते किन्तु फिर भी काफ़ी कहा जा सकता है। विभेद निम्न प्रकार से है :—

१—प्रोटामाइन (Protamine), २—हिस्टोन (Histone), ३—अलब्यूमिन (Albumin), ४—ग्लोब्यूलिन (Globulin), ५—स्क्लीरोप्रोटीन (Scleroprotein), ६—फास्फ़ोप्रोटीन (Phosphoprotein)

७—संयुक्त प्रोटीन (Conjugated Protein)

१—प्रोटामाइन (Protamine)—यह एक साधारण प्रकार की प्रोटीन मानी जाती है। इसके संगठन में गंधक का अंश नहीं होता है। इसके परमाणु आकार तथा भार में पेप्टोन के समान हैं। इसका अन्तिम विश्लेषण अमिनो ऐसिड (Amino-acid) के रूप में होता है। यह प्रायः कुछ मछलियों के शुक्राणुओं के सिर भाग में पायी जाती है।

२—हिस्टोन (Histone)—यह प्रोटीन का भाग लाल रक्त-कणों (Red Blood Corpuscles) के टूटने पर बनता है। इससे अमिनो एसिड (Amino acid) की अधिक मात्रा बनती है। यह ताप तथा अम्लों के संयोग से जमने लगता है तथा अमोनिया के साथ अवक्षेप लाता है।

३—अलब्यूमिन (Albumin)—इस प्रकार की प्रोटीन अण्डों आदि में पायी जाती है। यह साधारण नमक के घोल (Saline Solution) में प्रक्षिप्त अवस्था में रहती है। ताप के कारण जम जाती है।

४—ग्लोब्यूलिन (Globulin)--यह प्रकार भी परीक्षा में सभी प्रतिक्रियायें अलब्यूमिन जैसी देता है, किन्तु घुलन शक्ति भिन्न होने के कारण उसमें भेद हो गया है। यह प्रधानतः रक्त, अण्डे की सफेदी और मांस पेशियों में पाया जाता है।

५—स्क्लीरोप्रोटीन—(Scleroprotein)—यह एक विशिष्ट भेद है जिसे अभी तक अलब्यूमिनॉएड (Albuminoid) कहा जाता था। इसके कई भेद किये गये हैं।

i. कोलैजिन (Collagen)—यह श्वेत सौत्रिक तन्तुओं में पायी जाती है।

ii. गिलेटिन (Gelatin)—यह अस्थियों तथा सृक्तियों में रहती है तथा उनके उबालने पर यह प्राप्त होती है।

iii. इलास्टिन (Gelatin)—यह पीत सौत्रिक तन्तुओं, मांस तन्तुओं के वाह्यावरण में पायी जाती है।

iv. केराटिन (Keratin)—यह शरीर के कठोर भाग, यथा उपचर्म, नाखून, बाल, खुर, सींग आदि भागों में प्राप्त होती है। इसमें गंधक की मात्रा अधिक होती है।

६—फ़ास्फ़ोप्रोटीन (Phosphoprotein)—यह प्रकार भी अण्डे तथा दूध में पाया जाता है। इसी के कारण फ़ास्फोरिक अम्ल पाया जाता है। यह प्रोटीन भ्रूण तथा बाल्यावस्था में वृद्धि के लिये आवश्यक होता है।

७—संयुक्तप्रोटीन (Conjugated Protein)—प्रोटीन का यह एक विशिष्ट प्रकार है। इसमें प्रोटीन कुछ खनिज पदार्थों के साथ संयुक्त हो जाती है और इसलिये इतनी जटिल हो जाती है।

अ—क्रामोप्रोटीन (Chromoprotein)—यह वह प्रोटीन है जिसमें रंजन द्रव्य खासकर लौह पाया जाता है। यह प्रधानतः रक्त के हीमोग्लोबिन भाग में होती है।

ब—ग्लूकोप्रोटीन (Glucoprotein)—इस प्रोटीन में शर्करा जातीय पदार्थों का अंश रहता है। इस प्रकार में शरीर में पायी जाने वाली म्यूसिन तथा म्यूकायड (Mucoid) पदार्थ होते हैं।

स—न्यूक्लियोप्रोटीन (Nucleoprotein)— इसका भी संगठन अत्यन्त जटिल है। इसमें खनिज अम्लों के अतिरिक्त फास्फोरस पाया जाता है। यह कोष्ठ (Cell) के जीवनमूल (Protoplasm) तथा उनके चैतन्य केन्द्रों (Nucleus) में पायी जाती है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है तथा यहाँ के निवासियों का मुख्य खाद्य भी कृषि-जन्य पदार्थ हैं। गेहूँ, चावल, शाक-सब्जी के साथ-साथ वानस्पतिक प्रोटीन यहाँ के लोगों के खाद्य-पदार्थों में विशिष्ट रहता है। बहुत थोड़ी संख्या में लोग ऐसे हैं जो मांस तथा मछली का उपयोग करते हैं। फिर भी उनका वह प्रधान खाद्य द्रव्य नहीं है।

प्रोटीन की न्यूनता से हानिः—प्रोटीन के हीन मात्रा में मिलने पर शरीर का पूर्ण विकाश नहीं हो पाता। ग्रन्थियों का रस उत्कृष्ट न होने से उनसे इष्ट लाभ नहीं होता। कृशता, अपूर्ण वृद्धि, अशक्ति, कठिन शारीरिक या मानसिक श्रम अधिक समय तक न कर सकना, शीत-ऊष्ण द्वन्दों की सहन शक्ति की न्यूनता, श्वास शीघ्र चढ़ना, बुढ़ापे के लक्षण शीघ्र प्रकट होना, अल्पायु आदि २। राजयक्ष्मा, विसूचिका, अतिसार, विषमज्वर, कुष्ट आदि रोगों की प्रति रोधक क्षमता प्रोटीन की कमी से होती है।

भारतवर्ष में अभी तक दुग्ध का बाहुल्य रहा, लोगों के आहार का मुख्य भाग रहा तथा वानस्पतिक आहार से जो भी शरीर को पोषणार्थ कमी थी वह दूध द्वारा पूरी होती जाती थी। किन्तु अब प्रतिकूल समय आया है। दूध का अभाव होता जा रहा है। यह अब सर्वसाधारण की वस्तु नहीं रही। धन तथा धर्म का बन्धन मांस, मछली का वर्जन करता है। इन सब का फल शरीर पर पड़ रहा है। भारतीय जनता का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। सहन-शक्ति न्यून होती चली जा रही है। व्याधियों का आक्रमण दिन-प्रति-दिन वृद्धि की ओर

अग्रसर हो रहा है। यह अवस्था भारत के युवक तथा वृद्ध समाज ही की नहीं, इसका भीषण प्रभाव बालकों पर अधिक हो रहा है। बालकों को उनके वृद्धि काल में यदि उचित पौष्टिक आहार प्राप्त नहीं होता है तो उनका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है।

इतिहास बतलाता है कि भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं और उसी समय की विभूति थे भीम और अर्जुन जैसे पराक्रमी योद्धा। किन्तु आज देखते हैं ४ फ़ीट का अस्थि-कङ्काल धारण किये हुए ४० सेर का भार लिये भारत के युवक आफिस की ओर भगे जा रहे हैं। यह है हमारी, हमारी जाति की तथा भारत की दुर्दशा का नग्न चित्र।

अतः अब आवश्यकता है भारतीयों के आर्थिक उद्धार की—साथ-ही-साथ स्वास्थ्य-सुधार तथा स्वस्थ्य-रक्षा की। आर्थिक उन्नति हो जाने पर खाद्य पदार्थों का सुलभ होना तथा अच्छी श्रेणी की वस्तुओं की प्राप्ति सरल हो जायगी। इस तरह क्रमशः जनता को स्वास्थ्य-लाभ होगा। सहन-शक्ति का बिकाश होगा—व्याधियाँ क्रमशः कम हो जायेंगी।

तृतीय अध्याय

कार्बोहाइड्रेट (शर्करा-जातीय पदार्थ)

कार्बोहाइड्रेट शर्करा-जातीय पदार्थ हैं। आहार के बहुत बड़े अंश की पूर्ति इसी के द्वारा होती है। इसका संगठन कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन तत्वों से होता है। इसमें हाइड्रोजन

तथा ऑक्सीजन गैस तत्व उसी अनुपात से स्थिर होते हैं जिस अनुपात से वे जल निर्माण में भाग लेते हैं।

कार्यः—निम्नलिखित इसके कार्य माने जाते हैं—

१—शरीर की क्षीण अथवा नष्ट हुई शक्ति को पूरा करना।

२—शारीरिक ताप तथा बल की रक्षा करना।

३—शरीर में वसा की कमी होने पर उसके कार्यों का पूरा करना।

रासायनिक संगठन के अनुसार निम्न प्रकार का वर्गीकरण किया गया है।

Mono-Saccharide $C_6 H_{12} O_6$	Disaccharide $C_{12} H_{22} O_{11}$	Polysaccharide $(C_6 H_{10} O_5)_n$
Glucose द्राक्षशर्करा	Sucrose इच्छुशर्करा	Starch सिशारच।
Fructose फलशर्करा	Latose दुग्धशर्करा	Glycogen जीवशर्करा
Galactose दुग्धशर्करा	Maltose यवशर्करा	Dextrine
		Insulin
		Cellulose

१—द्राक्षशर्करा (Clucose):—यह शर्करा फलों तथा मधु से प्राप्त होती है। शरीर के प्रत्येक तन्तु तथा द्रव भाग में पायी जाती है। यह शीत और उष्ण जल, मद्य आदि में घुलनशील है। रचना इसकी कणों में होती है। ईच्छुशर्करा की भाँति स्वादु इसका मधुर नहीं होता है। प्रमेह रोग में व्यक्ति के रक्त तथा

मूत्र में इसकी मात्रा अधिक होती है जो रासायनिक परीक्षाओं द्वारा देखा जा सकता है।

२—फलशर्करा (Fructose):—इच्छुशर्करा पर हलके खनिज अम्लों की क्रिया के फलस्वरूप दो प्रकार की शर्करायें प्राप्त होती हैं। १—द्राक्षशर्करा और दूसरी फलशर्करा।

३—गैलकटोज़ (Galactose) :—दुग्ध शर्करा पर हलके खनिज अम्लों की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप यह शर्करा प्राप्त होती है। इसके सभी गुण धर्म द्राक्षशर्करा की नाईं होते हैं।

४—इच्छुशर्करा (Sucrose or Cane Sugar):—वानस्पतिक ससार में यह अधिकता से पायी जाती है। इसका प्रधान उद्गम स्थान इच्छुरस है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कन्दें हैं जिनसे यह निकाली जाती है।

५—दुग्धशर्करा (Lactose) :—दुग्ध का मधुर स्वाद उसमें घुली हुयी दुग्धशर्करा के कारण होता है। यह पानी में अनघुल तथा स्वादु में कम मधुर होती है। स्त्रियों के दुग्ध काल (Lactation Period) में कभी-कभी उनके मूत्र में इसकी उपस्थिति देखी जाती है।

६—माल्टशर्करा (Maltose) :—स्टार्च पर अम्लों की रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त की जाती है।

७—स्टार्च (Starch) :—वानस्पतिक द्रव्यों में यह अधिकता से पायी जाती है। स्टार्च का सूक्ष्मकण सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखा जा सकता है। इसका प्रत्येक कण सेलुलोज के आवरण में बन्द रहता है। इन कणों पर अम्लों की क्रिया होने पर स्टार्च टूटकर द्राक्षशर्करा में बदल जाती है।

८—डेक्स्ट्रीन (Dextrin):—स्टार्च से ग्लाइकोजन के रूप में परिणत होने की बीच की अवस्था इसकी होती है। यह पानी में घुलनशील और मधु में अनघुल होती ह।

६—जीवशर्करा (Glycogen):—भोजन द्वारा ग्रहण की गई शर्करा, द्राक्षशर्करा के रूप में शरीर में पहुँचती है, तथा उसी रूप में विभिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार पहुँचती है। शरीर में शर्करा की मात्रा अधिक होने पर वह यकृत में जमा रहती है और इस काल में इसका स्वरूप (Glycogen) जीव शर्करा का होता है। आवश्यकता होने पर फिर शरीर में द्राक्ष शर्करा के रूप में विभिन्न स्थानों पर पहुँचती है। यह शर्करा स्वरूप में श्वेत, स्वादुहीन और पानी में घुलनशील है, मद्य तथा ईथर में अनघुल होती है।

१० सेलुलोज (Cellulose):—इसका भी संगठन स्टार्च जैसा ही होता है, किन्तु इसमें वानस्पतिक भाग अधिक रहता है। यह संतृप्त अम्लों की रासायनिक क्रिया द्वारा द्राक्षशर्करा में टूट जाती है। आहार में इसका भाग अपचित अवस्था में ही मल के साथ निकल जाता है, कारण कि शरीरस्थ अम्लों का प्रभाव कुछ विशेष नहीं होता है।

ऊपर के वर्गीकरण से ज्ञात होता है कि वानस्पतिक भोज्य-पदार्थों का सत्व अंश ही उनकी विभिन्न शर्कराओं के रूप में ग्रहण होता है। ये सत्व अत्यन्त क्रियाशील होने के कारण शरीर में तत्काल ग्रहण होकर विभिन्न कार्य करते हैं। मांसाहार में इसकी मात्रा नहीं के बराबर होती है, किन्तु इसकी पूर्ति मांसाहार के साथ शर्करा जातीय पदार्थों के ग्रहण से होती है।

शर्करा जातीय पदार्थों (Carbohydrates) की तालिका

श्वेत तथा भूरी शर्करा—गुड़, साबूदाना, एकदली धान्य (चावल, गेहूँ, जौ, मक्का आदि), शुष्क फल, द्विदली धान्य (मटर, सोयाबीन), आलू, शकरकन्द, प्याज, ताजे फल, हरे शाक-सब्जी।

इस वर्ग के सभी पदार्थ वानस्पतिक हैं। वानस्पतिक भोजन

ही भारतवासियों का भोजन है। जल-वायु, रहन-सहन तथा अन्य कारणों से इस प्रकार के आहार की उपयोगिता साबित होती है, क्योंकि ऊष्ण देश होने कारण व्यक्ति थोड़ी-सी मेहनत में थक जाता है। यह श्रम शर्करा तथा उसी वर्ग की अन्य वस्तुओं से शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है। मांसाहार (प्रोटीन जातीय आहार) शीत देशों के लिये अधिक आवश्यक होता है। क्योंकि इस आहार से शारीरिक ताप की पूर्ति तथा शीत से रक्षा होती रहती है। यह भारतीयों के लिये आवश्यक नहीं। इसीलिये इनका आहार मांस-प्रधान न होकर वानस्पतिक-प्रधान हो गया है।

यह वानस्पतिक आहार भारतवासियों के लिये वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। इस अपूर्णता के अनेक कारणों में गरीबी प्रधान कारण है। लोग आहार केवल क्षुधा शान्त करने के लिये करते हैं। आहार-द्रव्य कौन से उपयोगी हैं इसका परिगणन कुछ तो अज्ञानतावश नहीं करते और कुछ आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण लाचारी से कर नहीं पाते क्योंकि वह उनकी शक्ति के बाहर की चीज़ हो जाती है

चतुर्थ अध्याय

वसा (Fats)

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहो त्रया मताः (च० सू० ३३-१३)

प्राणी की आहार-तालिका में वसा भी एक प्रधान घटक है। इसका ग्रहण प्राणी कई रूपों में करता है। घी; तैल, मक्खन, जानवरों की चर्बी, मछली का तेल आदि। इसका वर्गीकरण दो भागों में किया जाता है।

१—जान्तव वसा (Animal Fat)—मक्खन, घी, चर्बी, मछली का तेल, अण्डा।

२—वानस्पतिक तेल (Vegetable oils)—तिल तैल, सरसों तैल, अरण्ड तैल, जैतून तैल, गरी तैल।

रासायनिक दृष्टि से यदि इसका संगठन देखा जाय तो शर्करा जातीय पदार्थों (Carbohydrates) की भाँति यह भी कार्बन, आक्सीजन तथा हाइड्रोजन नामक तीन मूल तत्वों से बना है। किन्तु मूल तत्वों का उनकी आणविक संगठन की संख्या में भेद हो गया है। और इसी कारण उनके स्वरूप में तथा गुण-धर्म में ज़मीन-आसमान का फ़र्क स्थापित हो गया।

सभी प्रकार की वसाओं का रासायनिक दृष्टि से निम्न वर्गीकरण है :—

१—पामिटीन (Palmitin)—४५° C पर द्रवण होती है।

२—स्टीयरिन (Stearin)—५२° – ६५° C पर द्रवण होती है।

३—ओलियन (Olien) – ५° C पर द्रवण होती है।

सभी प्रकार की वसायें ऊष्ण मद्य, ईथर और क्लोरोफ़ार्म में घुलनशील तथा जल में अनघुल पायी जाती हैं।

यह वसा विभिन्न रूपों में प्राणी भोजन में लेता है। आमाशय तथा पक्काशय में अन्य आहार की नाईं पाचित होता है, और शरीर के विभिन्न अङ्गों तथा धातुओं में स्थिर हो कर अपना स्वाभाविक कार्य करती हैं तथा अधिक मात्रा में होने पर यकृत, वृक्क, अस्थिमज्जा तथा कुछ मांस पेशियों में इकट्ठा हो जाती है। और समय-समय पर उन्हीं स्थानों से आ कर अपना स्वाभाविक कार्य करती रहती है।

१—प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा शरीर को अधिक शक्ति प्रदान करना।

२—शरीर के अङ्गों तथा तन्तुओं को शक्तिशाली बनाना।

३—यह अङ्गों तथा चर्म के नीचे संचित होकर शरीर के ताप को कम होने से रोकती है।

४—शरीर की गठन को सुन्दर तथा मज़बूत बनाती है तथा भार की वृद्धि करती है।

५—कुछ मृदु अङ्गों की रक्षा का भार स्वयम् लेती है।

६—खटिक (Calcium) को आंत्रों द्वारा शोषण होने में सहायता देती है।

७—आमाशय तथा आंत्रों की अन्तः सतह का स्नेहन करके वहाँ की कला को नष्ट होने से बचाती है।

८—आहार में वसा भाग कम होने पर जल का शोषण अधिक होता है, अतः निम्न अङ्गों में शोथ की सम्भावना होती है।

९—जान्तव वसा का प्रयोग शरीर में एक प्रकार की शक्ति पैदा करता है जिससे व्यक्ति की सहन-शक्ति बढ़ती है।

अब उपरोक्त कार्यों को विचारने पर विदित होता है कि वसा शरीर के लिये बहुत ही आवश्यक है। बालकों को उनके वृद्धि-काल में वसा की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होनी चाहिये। बहुत अधिक मात्रा भी शरीर के लिये हानिकारक होती है। इससे अग्नि की मन्दता तथा शरीर की स्थूलता होती है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से अनावश्यक है। बुद्धि-जीवियों के लिये वसा की कम मात्रा होना लाभदायक है।

वसा की अधिक मात्रा, जो शरीर के विभिन्न अंगों में संचित हो जाती है, वह संचित शक्ति के रूप में समझना चाहिये। क्योंकि प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट की शरीर में कमी होने पर उसकी पूर्ति इस वसा के द्वारा भी हो जाती है और इस प्रकार जब तक वसा का अंश शरीर में रहता है तब तक शरीर को किसी प्रकार की क्षति नहीं होने पाती है।

वानस्पतिक अम्ल (Vegetable Acids)

यद्यपि यह वस्तु भोजन का कोई घटक नहीं है, किन्तु फिर भी प्रतिदिन भोजन के साथ अथवा बाद में ऐसी अनेक वस्तुयें प्रयोग में लाई जाती हैं जिनमें इस अम्ल की प्रधानता होती है। इन अम्लों का प्रधान कार्य भोजन के पाचक परिणाम की वृद्धि करना है। नींबू, नारंगी, सन्तरा, कमरख, इमली, खट्टे अंगूर आदि इसके प्रधान उदाहरण हैं। इन फलों से प्राप्त अम्ल भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। किसी फल में टारटारिक अम्ल, किसी में सायट्रिक अम्ल, किसी मे आकज़ेलिक अम्ल अथवा ऐसिटिक अम्ल की प्रधानता रहती है। ये सभी अम्ल भी कार्बन, आक्सीजन व हाइड्रोजन इन तीन मूल तत्वों से बनते हैं। यह अम्ल शरीर की अन्य वस्तुओं से मिलकर विशिष्ट लवण बनाते हैं जिनसे रक्त की क्षारीयता स्थिर रहती है, जो स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। इन अम्लों की कमी से रक्त की क्षारीयता तथा उसकी सहन-शक्ति घट जाती है और इससे स्कर्वी रोग हो जाता है।

अजैव द्रव्य

अनुसंधानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि शरीर के निर्माण में कुछ ऐसे भी घटक प्रयुक्त होते हैं, जिनका उद्गम-स्थान पृथ्वी है यथा चूना, नमक, खटिक, फास्फोरस, मैगनीशियम, पोटाशियम, सोडा वगैरह। इन द्रव्यों मे कुछ तो बिल्कुल तत्व-स्वरूप में शरीर में ग्रहण होते हैं, कुछ अन्य तत्वों के साथ मिल कर लवण रूप में। शरीर के अन्दर उपस्थित होकर इन खनिज तत्वों तथा लवणों का संश्लेषण तथा विश्लेषण होकर अन्य नवीन पदार्थ बनकर शरीर का पोषण, वर्धन आदि क्रियायें होती हैं और शरीर को स्वस्थ रखती हैं—यथा कैलशियम,

पोटाशियम, मैगनीशियम के फास्फेट शरीर के अस्थि भाग का निर्माण करते हैं। इन्हीं लवणों की कमी होने पर बालकों में अस्थि का स्वाभाविक विकास नहीं होता तथा अस्थिवक्रता आदि अनेक रोग पाये जाते हैं। नमक (सोडियम क्लोराइड) रक्त के लिये विशेष उपयोगी होता है तथा आमाशयिक तथा अन्य पाचक रसों का निर्माण करता है। लौह भी अन्य लवणों के समान रक्त-निर्माण में अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। इसकी अनुपस्थिति में रक्त का लाल रङ्ग हो नहीं सकता है।

खटिक (Ca):—भोजन के खनिज घटकों में यह प्रधान है। इसका ग्रहण शरीर में अन्य वस्तुओं के द्वारा होता है। यह अस्थि-कङ्काल तथा दन्तों के निर्माण में भाग लेता है, तथा हृदय के कार्य को सुचारु रूप से चलाता है। रक्त में जम जाने की शक्ति पैदा करता है, जिससे आघात आदि होने पर व्रण से अधिक रक्त-क्षय न हो सके। वसा और लौह को पचाकर शरीर में ग्रहण करने में सहायता करता है। भोजन में अन्य लवणों की अपेक्षा इसकी अधिक कमी पाई जाती है तथा इसका दुःष्परिणाम बालकों तथा वृद्धों पर अधिक देखा जाता है। इसकी कमी से अस्थि का विकास नही होता, दाँत मज़बूत नहीं होते। शीघ्र ही घिस जाते है। तथा शारीरिक दुर्बलता भी होती है।

दूध, मक्खन, दूध का पानी, तथा इसके अन्य विकार, अण्डा, दाल, सूखे फल, तथा हरे शाक, सब्जी आदि में खटिक की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसमें दूध प्रधान वस्तु है। यही बालकों का आहार होता है। इसी से उनका उचित पोषण तथा वर्धन हो सकता है।

चावल, गेहूँ, मक्का तथा अन्य एकदली धान्य, आलू, शकरकन्द आदि अन्य कन्दें, शर्करा, साबूदाना, मछली का

मांस आदि वस्तुयें ऐसी हैं जिनमें खटिक की मात्रा अत्यन्त कम होती है, तथा इनके भोजन से शरीर में उचित मात्रा में खटिक का ग्रहण न होने से अनेक व्याधियाँ दिखाई पड़ती हैं।

फ़ास्फ़ोरस (Phosphorus):—यह खटिक आदि अन्य खनिजों के साथ मिलकर अस्थियों तथा दाँतों के निर्माण में भाग लेता है। शरीर के प्रत्येक कोष्ठ में इसका कुछ अंश रहता है, जो कोष्ठ-वृद्ध तथा शरीर-वृद्धि में सहायभूत होता है। रक्त में भी यह पाया जाता है तथा उसको स्वस्थ रखता है। दूध, छाछ, अण्डा, सोयाबीन, दाल, खजूर, अखरोट, गेहूँ, जौ, तरबूज, ककड़ी में भी, मांस, मछली आदि में यह पाया जाता है, तथा इन्हीं पदार्थों के आहार करने पर यह शरीर में पहुँचता है।

पालिश किए हुए चावल तथा मैदा, कन्द तथा जड़ों वाले शाक-सब्जी में फ़ास्फ़ोरस कम या नहीं पाया जाता है।

फ़ास्फ़ोरस की कमी से अस्थियाँ तथा दाँतों की वृद्धि ठीक प्रकार से नहीं होती। अतः भोजन में ऐसी वस्तुओं का ग्रहण होना चहिए जिनमें खटिक तथा फ़ास्फ़ोरस दोनों ही अधिक मात्रा में पाये जाते हों।

नमक (NaCl):—यह भी शरीर का दूसरा खनिज लवण है, अतः प्रत्यक्षरूप से तथा अन्य भोजन पदार्थों के द्वारा शरीर को प्राप्त होता है। यह आमाशय में नमक का तेज़ाब (HCl) तथा पित्त के लवणों को पैदा करता है। रक्त में नमक के कारण ही ग्लोब्युलिन नामक एक पदार्थ घुला रहता है। यह रक्त के द्रव भाग में पाया जाता है। रक्त की क्षारीयता स्थिर रखने के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। नमक के ही कारण से शरीर के कोष्ठ उचित मात्रा में द्रव का शोषण करने में सफल होते हैं। अधिक मात्रा में नमक शरीर में अनेक अवगुण पैदा

करता है। इससे वृक्क अधिक विकृत होते हैं, तथा शरीर की रक्त-वहा नलिकायें भी विकृत हो जाती हैं।

व्यक्ति या तो मांसाहारी होता है या शाकाहारी। मांस में नमक की मात्रा काफी होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से नमक आवश्यक नहीं है। शाकों तथा सब्जियों में इसकी मात्रा कम होती है। अतः शाकाहारी व्यक्ति में इसकी कमी पूर्ण करने के लिये ऊपर से नमक लेना आवश्यक होता है।

लौह (Iron):—वह शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसी के कारण रक्त में लाल रङ्ग पाया जाता है। जो फुफ्फुस से ऑक्सीजन का शोषण करके सारे शरीर में पहुँचाते हैं, और इस प्रकार जीवन में सहायक होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक लौह की आवश्यकता होती है। बालकों को अपेक्षाकृत अधिक लौह तथा लौहवाले पदार्थों का प्रयोग करना चाहिये। घी, तैल, मैदा, चावल पालिश किये हुये ऐसे पदार्थ हैं जिनमें लौह की मात्रा कम अथवा नहीं के बराबर पाई जाती है।

यकृत, लाल मांस पेशियाँ, अण्डा, दाल, सभी धान्य, प्याज, शलजम, गाजर, ककड़ी, तरबूज, टिमाटर, हरी पत्तीवाले शाक ऐसे पदार्थ हैं जिनमें लौह की मात्रा अधिक पाई जाती है।

आयडीन (Iodine):—यह भी शरीर के लिये उपयोगी है। इसका वितरण शरीर में गले की अवटुका ग्रन्थि (Thyroid) द्वारा होता है। यह हरे शाक, सब्जी आदि के द्वारा शरीर में आती है। शरीर में इसकी कमी होने पर अवटुका ग्रन्थि की वृद्धि (Goitor) होती है।

गंधक (sulpher) :—यह शरीर में ऑक्सीजन ग्रहण तथा ताप आदि उत्पन्न करने के लिये आवश्यक होता है। यह मांस, दूध, अण्डों द्वारा शरीर को प्राप्त होता है।

जल (Water):—जल शरीर का एक आवश्यक पदार्थ है। शरीर के निर्माण में लगभग ८४% भाग जल का होता है। प्रति दिन यह शरीर से अनेक भागों से क्षय होता रहता है और उसी की पूर्ति के लिये जल की आवश्यकता भोजन के साथ तथा अलग होती है। शरीर में इसकी कमी प्यास के द्वारा मालूम होती है, अतः उस काल में जल का ग्रहण आवश्यक होता है। भोजन के साथ भी जल का ग्रहण होता है। इससे भोजन के सूक्ष्म भागों में विभक्त होकर तथा उसके शोषण में सहायता करता है। रक्त में पोषक द्रव जल द्वारा ही शरीर के विभिन्न अङ्गों में पहुँचते हैं और इस प्रकार जल की उपादेयता साबित होती है।

पंचम अध्याय

विटामिन (Vitamins)

भोजन के आवश्यक घटक, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा लवण आदि हैं। इनका आवश्यक मात्रा में प्रयोग शरीर-धारण के लिये आवश्यक है, किन्तु यदि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा आदि अपनी आवश्यक मात्रा में प्रयोग किये जाते हैं तो देखा जाता है कि व्यक्ति का उचित वर्धन तथा पोषण नहीं होता। अतः साबित होता है कि आहार के इन घटकों के अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थ भी आहार में सम्मिलित हैं जो शरीर तथा स्वास्थ्य-वर्धन के लिये आवश्यक हैं। अभी तक इन पदार्थों के स्वरूप का परिचय नहीं हो सका है, किन्तु इतना निश्चय तो

अवश्य हो गया है कि ऐसे पदार्थ उन आहार-द्रव्यों में संयुक्त रहते हैं और उन्हीं पदार्थों के प्रयोग से उनकी पूर्ति हो जाती है।

आहार-तालिका में दूध, घी, हरे शाक, सब्जी, फल तथा सूखे मेवे आदि सम्मिलित रहते हैं। रासायनिक दृष्टि से देखा जाय तो यह भी वहीं प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा आदि के स्वरूप में हो सकते हैं किन्तु इनमें एक विशिष्ट द्रव्य की उपस्थिति का ज्ञान लोगों को अनेक अनुसन्धानों से हुआ है जो कि व्यक्ति के जीवन तथा स्वास्थ्य के लिये उपयोगी है। इसे विटामिन या जीवनीय गण कहा गया है। विभिन्न प्रकार के द्रव्य इनका उत्पत्ति स्थान माने जाते हैं। इनकी संख्या आजकल ६ होती है। A, B, C, D, E और K प्रत्येक भेद का नामकरण होता है। इनमें A, B, C वसा में घुलनशील हैं तथा B और C जल में घुलनशील होते हैं।

जीवनीय गण A :—यह जीवनीय गण शरीर-वृद्धि के लिये आवश्यक है अतः बालकों में उनकी वृद्धि की दशा में इसका भोजन में समावेश होना अत्यन्त आवश्यक है। इसकी कमी से अथवा भोजन में अनुपस्थित होने से बालकों की वृद्धि रुक जाती है। यह शरीर को बढ़ाते ही नहीं किन्तु शरीर में एक प्रकार की विशिष्ट क्षमता उत्पन्न करते हैं जिसके कारण अनेक रोगों से मुक्ति मिलती है। अतः इनकी कमी के कारण शरीर की वह रोग-क्षमता क्षीण हो जाती है जिससे अनेक रोग खास-कर नेत्र रोगों की प्रवृत्ति होती है। इनके अतिरिक्त इसमे धातुओं की भी कमी अथवा दुर्बलता होती है तथा सुषुम्ना दण्ड-क्षय (Degeneration of Spinal Cord) नामक रोग होता है।

सन्तानोत्पत्ति शक्ति पर इसकी कमी का काफी प्रभाव पड़ता है। बंध्यत्व तथा निःसन्तानता प्रायः होती है। स्त्रियों में स्तन्य दुग्ध की कमी होती है। यह जीवनीय गण अनेक वस्तुओं में पाये

जाते हैं। उनमें ताजा दूध, मक्खन, अण्डे के पीत भाग, मछली के तैल तथा कुछ ताजे फल प्रधान हैं। घी, वसा, चर्बी आदि जितनी जन्तु जन्य वस्तुयें हैं उन सभी में कुछ-न-कुछ इसका अंश पाया जाता है। तैल आदि वानस्पतिक वस्तुओं में इसका अंश नहीं होता है।

यह जीवनीय गण वसा में घुलनशील है। इसीलिये जान्तवीय वसाओं में इसकी उपस्थिति होती है। मद्य में भी यह घुलनशील है।

बी तथा सी जीवनीय गण इससे भिन्न होते हैं, क्योंकि ए से बेरी-बेरी तथा स्कर्वी रोग में कोई लाभ नहीं देखा जाता है।

जीवनीय गण : —यह जीवनीय गण शरीर की वृद्धि को करता तथा प्रान्तिक नाड़ी शोथ को रोकता है। यह प्रधानतः चावल, हरे शाक, सब्जी, खमीर, द्विदली धान्यों के अंकुर तथा गेहूँ में पाया जाता है। शरीर पर प्रभाव के अनुसार यह जीवनीय गण दो भागों में विभक्त किया गया है। एक B_1 विटामिन कहलाता है तथा दूसरे को B_2 विटामिन कहते हैं। बी जीवनीय गण प्रधानतः प्रान्तिक नाड़ी शोथ तथा बेरी-बेरी रोग को रोकता है। यह प्रधानतः चावल, शाक, सब्जी में होता है। पालिश किये हुये चावलों के अधिक प्रयोग से तथा भोजन में शाक, सब्जी के अनुपस्थित होने पर नाड़ी शोथ अथवा बेरी-बेरी रोग होते हैं।

बी जीवनीय गण का प्रधान गुण शरीर की वृद्धि का होता है, तथा इसका कार्य ए के समान है। यह भी उन्हीं सभी द्रव्यों में पाया जाता है जिनमें प्रथम प्रकार पाया जाता है, अर्थात् दोनों ही भेद, प्रत्येक चावल, द्विदली धान्यों के अंकुर,

हरे शाक, सब्जी, खमीर में होते हैं किन्तु प्रभाव अलग-अलग दिखाई देता है।

यह जीवनीय गण जल में घुलनशील है। शुद्ध मद्य में अनघुल व १००° तापक्रम पर नष्ट नहीं होता। साधारणतः शाक, सब्जी पकाने पर उनका पानी हटा दिया जाता है। अतः जल में घुलनशील होने के कारण यह जीवनीय गण भी जल के साथ वस्तुओं से अलग हो जाता है। लोगों को चाहिये कि वे इस प्रकार वस्तुओं को उबालकर पानी अलग न करें किन्तु उसका भोजन में प्रयोग करें, तब उसका उचित लाभ दिखाइ देगा।

जीवनीय गण C :—यह जीवनीय गण स्कर्वी रोग प्रतिषेधक होता है। यह प्रधानतः नींबू, नारङ्गी, टमाटर, हरे शाक, गोभी आदि में अधिकता से पाया जाता है। द्विदली धान्यों के अंकुरावस्था में तथा आलू, गाजर, प्याज, चुकन्दर आदि कन्दों में यह पाया जाता है।

यह जीवनीय गण अन्य की अपेक्षा ताप अधिक सहन नहीं कर सकता है। इस जीवनीय गण वाली वस्तुओं को अधिक तापक्रम पर तथा अधिक काल तक हलके तापक्रम पर रखने से यह नष्ट हो जाता है। यह पानी में घुलनशील है। क्षारीय वस्तुओं में यह नष्ट हो जाता है, तथा अम्लों में यह काफ़ी समय तक रक्खा जा सकता है।

जीवनीय गण P :—नींबू के रस में यह पाया जाता है। इसमें जो अम्ल पाया जाता है वह साइट्रिक अम्ल (Citric Acid) होता है और इसीलिये इसको साइट्रिन कहा जाता है। इसका प्रभाव प्रधानतः केशिकाओं पर होता है, जिससे केशिकाओं की दीवाल के द्वारा रक्त का द्रवांश तन्तुओं में चला आता है, तथा तन्तुओं का त्याज्य पदार्थ केशिकाओं में प्रचारित रक्त में चला आता है।

जीवनीय गण D :—यह जीवनीय गण एक विशिष्ट कार्य शरीर में करता है। इसकी उपस्थिति से अस्थियों की दशा सुधरती है। अन्यथा इसकी कमी से बालकों में (रिकेट) अस्थिवक्रता नामक रोग होता है, क्योंकि इस अवस्था में खटिक (Ca) तथा फ़ास्फोरस का लवण नहीं बन पाता है जिससे अस्थियों की मृदुता बढ़ती जाती है। यह जीवनीय गण उन्हीं सब पदार्थों में पाया जाता है जिनमें विटामिन A की प्राप्ति होती है, यथा घी, वसा, मक्खन, अण्डा, दूध आदि। यह A की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। अधिक ताप आदि के कारण A जीवनीय गण नष्ट हो जाता है किन्तु D जीवनीय गण नष्ट नहीं होता है। सूर्य की रश्मियों तथा नील-लोहित किरणों का भी इस पर प्रभाव होता है, अर्थात् यह जीवनीय गण इन रश्मियों तथा किरणों से वस्तुओं में पैदा होता है, और साथ-ही-साथ मनुष्यों में रश्मियों तथा किरणों के प्रयोग वही लाभ करते हैं जो इस जीवनीय गण के प्रयोग से हो सकता है।

जीवनीय गण E: – यह जीवनीय गण एक विशिष्ट है। यह A जीवनीयगण के समान वसा में घुलनशील होता है। इसका प्रभाव नर तथा नारी जीवों के सन्तानोत्पादक अङ्गों पर पड़ता है। इसकी कमी से बन्ध्यत्व तथा नपुन्सकता बढ़ती है। इसका खास प्रभाव पीयूष ग्रन्थि पर होता है जो स्त्रियों में सन्तानोत्पादक अङ्गों पर अपना असर रखती है। यह विभिन्न धान्यों के अंकुरों के तैल में और खास कर गेहूँ के अंकुर के तैल (Wheat germ oil) में पाया जाता है। मटर, पातगोभी तथा अन्य हरे शाकों या वृक्षों की पत्तियों में पाया जाता है। दूध, मक्खन आदि अन्य जान्तवीय वसाओं में काफी मात्रा में पाया जाता है।

जीवनीय गण K:—यह एक विशिष्ट प्रकार का है। इसकी

कमी से बालकों में रक्त जमने की क्रिया धीमी पड़ जाती है। साधारणतः यह जीवनीय गण हरे शाक-सब्जी यथा शलजम, चुकन्दर, अण्डे, यकृत आदि में पाया जाता है। इसके शोषण में पित्त की आवश्यकता होतो है। इसीलिये यकृत के विकारों, पित्त-वाहिनियों की रुकावट आदि से रक्त स्वाभाविकतया देर में जमता है, क्योंकि रक्त को जमाने वाला पदार्थ प्रोथ्रोम्बिन (Prothrombin) ऐसी अवस्था में कम रहता है।

षष्ठ अध्याय

भोजन की मात्रा

पूर्व में हम कह आये हैं कि शरीर में निरन्तर कुछ-न-कुछ कार्य होता रहता है। जब तक व्यक्ति जाग्रतावस्था में रहता है तब तक व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवम् अन्य अनेक कार्य करता रहता है। निद्रावस्था में भी कुछ कार्य होता ही रहता है, किन्तु वह अपेक्षाकृत कम मात्रा में। इन सभी कार्यों में शरीर का ताप तथा शक्ति का नाश होता है। यह शक्ति तथा ताप इसी भोजन द्वारा पूरित होता है।

मनुष्य जो आहार ग्रहण करता है उसका सबसे बड़ा अंश शारीरिक श्रम-जन्य ह्रास की पूर्ति में खर्च होता रहता है।

१—हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्नाग्निः समाहितः।
अन्नपानसमिद्भिर्ना मात्रा कालौ विचारयन्॥ च० सू० २७-३४५

२—यदाहार जातं समाश्चैव शरीर धातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोत्येतद्धितं विद्ध विपरीतं त्वहितमिति। च० सू० २५-३३

शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग निरन्तर कुछ-न-कुछ कार्य करते ही रहते हैं, और इस प्रकार जो क्षीणता अङ्गों में आती है वह भोजन द्वारा ही पूरी होती है; तथा सभी स्थितियों में शरीर का ताप एक स्वाभाविक ताप-क्रम पर निश्चित रहना इसी आहार द्वारा होता है, क्योंकि ताप प्रत्येक क्षण विभिन्न कारणों से नष्ट होता रहता है, और उस ताप की कमी इसी आहार के ताप द्वारा पूरित होती जाती है। बालकों को अपेक्षाकृत अधिक आहार-मात्रा की आवश्यकता होती है—कारण कि उनके शरीर में दो कार्य होते हैं; प्रथम तो स्वाभाविक शारीरिक श्रम तथा दूसरी शारीरिक वृद्धि। इसीलिये इन्हीं दिनों कार्यों की पूर्ति के लिये अपेक्षाकृत युवा से अधिक मात्रा में आहार आवश्यक होता है।

स्वस्थावस्था में इसकी पूर्ति कितनी भोजन की मात्रा से हो सकती है इसका लेखा विभिन्न विद्वानों के अनुसन्धान द्वारा होता है, किन्तु यह मात्रा सभी व्यक्तियों में तथा सर्वकाल में समान नहीं हो सकती है, क्योंकि सभी व्यक्ति समान मात्रा में कार्य करके शक्ति का व्यय नहीं करते तथा सभी समयों में एक समान कार्य नहीं होता। अतः इस मात्रा का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग तथा वय, काल, आयु, शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, लिङ्ग-भेद आदि का विचार करके करना चाहिये।

लिङ्ग—प्रायः स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा कमजोर तथा शारीरिक गठन में छोटी होती हैं। अपेक्षाकृत स्त्रियाँ कार्य भी कम करती हैं। अतः यह साधारण अनुभव है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम मात्रा में भोजन करती हैं।

आयु—बालक युवा पुरुषों की अपेक्षा शरीर में छोटे होते हैं, किन्तु बालकों के भोजन की मात्रा युवा पुरुषों की मात्रा से अधिक होती है कारण वह उनका वृद्धि-काल होता है।

उसकी पूर्ति के लिये अधिक मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है। अनुमान किया जाता है कि एक दस वर्ष के बालक के भोजन की मात्रा एक पूर्ण युवती के भोजन की आधी मात्रा होती है, तथा चौदह वर्ष के बालक के भोजन की मात्रा उसके बराबर होती है। बच्चे और बालकों को प्रोटीन तथा वसा-प्रधान भोजन अधिक मात्रा में देना चाहिये। इससे इनके वृद्धि-काल में क्षय पूर्ति होकर स्वाभाविक वृद्धि होती रहती है।

वृद्धावस्था में कार्य करने की क्षमता घट जाती है, अतः शक्ति तथा ताप का नाश कम होता है और इसीलिये पूर्ति की कम आवश्यकता होती है। युवकों से कम भोजन की मात्रा वृद्धों को ज़रूरत पड़ती है।

शरीर का आकार—लम्बे डीलवाले पुरुषों की अपेक्षा लघु आकारवाले पुरुषों के भोजन की मात्रा कम होती है। मोटे-ताजे पुरुषों की अपेक्षा दुबले व्यक्तियों के भोजन की मात्रा कम होती है।

परिश्रम—कम मेहनत करनेवाले व्यक्तियों के भोजन की मात्रा अधिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तियों से कम होती है। विश्राम की अवस्था में भोजन की कम मात्रा आवश्यक होती है। मस्तिष्क सम्बन्धी अधिक कार्य करनेवाले व्यक्तियों को अधिक भोजन की मात्रा आवश्यक नहीं, किन्तु उसका प्रकार उत्तम होना चाहिए। इन व्यक्तियों के भोजन में प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। शारीरिक परिश्रम करनेवाले व्यक्तियों के भोजन में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

देश—शीत प्रदेश निवासियों के भोजन की मात्रा अधिक होती है, और उसमें भी वसा प्रधान होना चाहिए, क्योंकि शीत प्रदेश में अधिक ताप की आवश्यकता होती है और ताप वसा से प्राप्त होती है, इसीलिए वसा-प्रधान भोजन निर्देश किया गया है।

ऊष्ण देशों में भोजन की मात्रा कम आवश्यक होती है। उसमें भी कार्बोहाइड्रेट प्रधान होना चाहिए। इससे अधिक ताप नहीं बनता है, और न अधिक ताप की ऊष्ण देश के व्यक्तियों को आवश्यकता होती है।

ऋतु—यह एक साधारण अनुभव है कि शीत ऋतु में लोगों के भोजन की मात्रा बढ़ जाती है तथा ऐसे पदार्थ आहार में ग्रहण किये जाते हैं जो ग्रीष्मकाल में नहीं खाये जाते। शीत ऋतु में ताप अधिक मात्रा में शरीर में आवश्यक होता है, और वह अधिक मात्रा में भोजन तथा सूखी मेवा, फल, घी आदि के द्वारा पूरा होता है। ग्रीष्मकाल में ताप की मात्रा बढ़ती है। अतः ऐसे पदार्थ का ग्रहण किया जाता है जिसमें ताप कम बने, किन्तु शक्ति पूर्ण मात्रा में प्राप्त होती हो। इसीलिए शर्करा, चावल आदि आवश्यक हैं।

शक्ति या ताप, जो भोजन द्वारा प्राप्त होता है, वह चीज एक ही है। ताप का ही रूप-परिवर्तन शक्ति कहा जाता है। अतः अब यहाँ उस शक्ति या ताप के माप का विचार करेंगे, जिसको कि स्वाभाविक तथा अन्य अवस्थाओं में आवश्यकता होगी।

ताप की एकाई को कैलारी कहा जाता है। कैलारी ताप की वह मात्रा है जो १ पौण्ड जल को ४ डिगरी फेरेनहाइट या एक लिटर जल के ताप को १ डिगरी शतांश बढ़ा दे; अथवा ७७२ पौंड भार को पृथ्वी से १ फुट ऊँचा उठा सके; या १ पौंड भार को ७७२ फ़ीट ऊँचा पृथ्वी से उठा सके।

अब आहार घटक—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा आदि—ताप के एकांक 'कैलारी' की दृष्टि से कितनी शक्ति तथा ताप का उत्पादन करते हैं यह देखना है। अनेक अनुसन्धानों द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि एक ग्राम प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व वसा नष्ट होकर निम्नलिखित ताप की मात्रा उत्पन्न करते हैं:—

प्रोटीन	....	....	४·४ कैलारी
वसा	....	....	६·३ कैलारी
कार्बोहाइड्रेट	....	....	४·१ कैलारी

मनुष्य की कितनी शक्ति कार्य करने में खर्च होती है तथा कितना ताप शरीर से नष्ट होता है जिसकी पूर्ति की आवश्यकता भोजन द्वारा होती है इस विषय पर अनेक विद्वानों ने अनुभव प्राप्त किया है। इन लोगों का मत है कि मनुष्य की शक्ति का कार्य करने पर नाश $\frac{1}{6}$ भाग होता है। शेष शक्ति शरीर से ताप के रूप में नष्ट होती है।

निम्नलिखित वस्तुओं के एक ग्राम को पूरा जलाने पर जितनी शक्ति उत्पन्न होती है वह निम्न तालिका से ज्ञात होती है :—

अरारोट	....	....	३·६०	कैलारी
अण्डा	....	....	१·६०	,,
आलू	....	....	·६८	,,
गोभी	....	....	·३४	,,
गाजर	....	....	·५७	,,
चावल	....	....	३·५	,,
आटा मक्का	....	....	३·६०	,,
बिस्कुट	....	....	३·१०	,,
मटर	....	....	३·३१	,,
मांस	....	....	८·८६	,,
मक्खन	....	....	८·६०	,,
रोटी (डबल)	....	....	३·१०	,,
दूध	....	....	·७५	,,
शर्करा	....	....	३·३४	,,

साधारण अवस्था में मनुष्य जो कार्य करता है उसकी मात्रा ४१० कैलारी के बराबर होती है। अतः उसके लिये लगभग २५०० कैलारी ताप पैदा करनेवाले भोजन की आवश्यकता होती है। अलग-अलग व्यवसायों के अनुसार यह निम्न तालिका है—

विश्रामावस्था	१६८०	कैलारी
सूक्ष्म कार्य तथा अधिक विश्राम	२१७०	,,
सामान्य कार्य—क्लार्क	२५००	,,
सामान्य कार्य—डाक्टर, वकील	२६५०	,,
शारीरिक परिश्रमवाले (सामान्य)	३१००	,,
कठिन परिश्रम (शारीरिक)	३६००	,,
अत्यन्त कठिन परिश्रम (मल्लाह)	५०००	,,

विभिन्न घटकों की आवश्यक मात्रा

अभी तक हमने देखा कि विभिन्न आहार द्रव्यों से कितने ताप की उत्पत्ति होती है तथा मनुष्य के विभिन्न अवस्थाओं में कार्य करने में कितने ताप अथवा शक्ति की आवश्यकता होती है कि जिससे उसकी पूर्ति होती जाय। किन्तु अब हम देखेंगे कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा की कितनी मात्रा भोजन में होनी चाहिये कि विभिन्न परिस्थितियों में कार्य करनेवाले व्यक्तियों के आवश्यक ताप की पूर्ति होती जाय।

आहार द्रव्यों की मात्रा स्थिर करते समय व्यक्ति की रुचि आदि का भी ध्यान रखना चाहिये और इसीलिये केवल एक ही पदार्थ के स्थान पर अनेक पदार्थों का मिश्रण-आहार नियत किया जाय तो वह अधिक उचित होता है। इसी प्रकार शरीर की विभिन्न आवश्यकताओं की भी पूर्ति हो जायगी।

इस दिशा में किये गये अनुसन्धानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि शरीर में आहार की उपादेयता उसमें स्थित कार्बन तथा

नाइट्रोजन की मात्रा पर होती है। एक साधारण भार वाला व्यक्ति चौबीस घण्टे में अपनी श्वास-प्रश्वास की क्रिया द्वारा २५० से २८० ग्राम तक कार्बन नष्ट करता है तथा मूत्र द्वारा १५ से १८ ग्राम तक नाइट्रोजन शरीर से बाहर निकालता है। अतः कार्बन व नाइट्रोजन का अनुपात ३·५ : १ का होता है। अर्थात् नाइट्रोजनवाले पदार्थों (प्रोटीन) की मात्रा कम और कार्बनवाले पदार्थों (कार्बोहाइडेट्, वसा) की मात्रा तिगुनी से भी अधिक होनी चाहिए। विद्वानों की राय है कि १६ ग्राम नाइट्रोजन करीब १०० ग्राम प्रोटीन से प्राप्त होती है। वसा की कैलारिक शक्ति अधिक होती है। इसलिए उसकी मात्रा कम होती है। बाकी सभी कमी कार्बोहाइडेट् के द्वारा पूरी की जाती है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्थापित की हुई आहार-तालिका :—

प्रोटीन	....	....	१०० ग्राम
वसा	....	....	१०० ,,
कार्बोहाइडेट्	....	....	३३३ या २५० ग्राम

भारतीयों के लिए हितकर आहार-तालिका :—

साधारण—

प्रोटीन	....	....	१०० ग्राम	३१८२ कैलारी
वसा	....	....	६० ,,	
कार्बोहाइडेट्	....	....	५४० ,,	

कठिन परिश्रम—

प्रोटीन	....	....	१८१ ,,	३७०६ कैलारी
वसा	....	....	६८ ,,	
कार्बोहाइडेट्	....	....	५२० ,,	

निम्न तालिका द्वारा निर्देशित किया जाता है कि आहार के विभिन्न घटकों का क्या संगठन है और कितनी-कितनी मात्रा मे प्रत्येक द्रव्य पाये जाते हैं।

मांस वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
हिरन का मांस	१७·११	५·७७	×	७५·६६	१·३६
मुर्गे का मांस चर्बी-रहित	१६·७८	१·४२	×	७६·२८	७·३७
गाय का मांस	२०·६६	५·४१	×	७२·०३	१·१७
मछली	१५·००	७·००	×	७६·००	२·००
अण्डा (सफेदी)	१२·६	·२५	×	८५·७	·५६
अण्डा (पाला)	१६·२	३१·७५	·३	५०·६	१·०६

शूक वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
गेहूँ का आटा	१२·२४	२·१८	७०·६२	११·८३	२·२७
जव का आटा	१०·००	२·२	७३·३	११·१३	१·३७
मकाई का आटा	८·७	५·४	७०·६	१२·५	१·५
ज्वार का आटा	१४·२	७·३	६६·४	७·२	१·६
बाजरा का ,,	१०·४	३·६	७१·२	१२·३	२·२
चावल	६·८६	·८	७८·८	११·०५	१·२३

शिम्बी वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
अरहर की दाल	२७·६७	३·३१	५७·२७	१०·०८	५·५
मूँग की दाल	२३·६२	२·६६	५३·४५	१०·८७	३·५७
मसूर की दाल	२५·४७	३·०	५५·०३	१०·२३	३·३३
मटर हरे	४·०	·५	१६·५	७८·१	·६
मटर सूखे	२१·०	१·८	६१·४	१३·०	२·६०
उरद	२५·५	१·७	५६·४	१३·१	३·३

शाक वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
गोभी बन्द	१·८	·४	६·८	८९·१	१·३
गोभी	८२·२	·४	५·६	६·७	·८
टमाटर	·६	·४	३·६	६४·३	·५
भिण्डी	१·६६	१·१	५·७२	६०·४	·८
बैंगन	·८६	·६४	३·४८	६३·६८	·२६
कद्दू	·८	·१	२१·४	७४·०	·६

कन्द वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
आलू	१·२	·१	२१·४	७६·०	+
आलू (उबले)	+	+	२१·४	७६·०	+
गाजर	·५	·३	१०·१	८५·७	१·०
मूली	१·७	·१	४·६	६०·६	·७
चुकन्दर	·५	·१	१४·०	८३·६	१·०
शलजम	·६	·१५	६·८	६३·४	·८

दुग्ध वर्ग

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लवण
स्त्री का दूध	२·४६७	२·६	५·८७	८८·०	·१६
गाय ,, ,,	४·८	३·७	४·८	८६·०	·७
भैंस का दूध	४·४	६·०	४·८	८८·०	·८
बकरी ,, ,,	३·६८	४·२	४·०	८७·५४	·५–·६
गधी ,, ,,	१·७६	१·०२	५·५	८७·५४	·४२

शुष्क फल

	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	जल	लषण
बादाम	२४·०	५४·०	१०·०	६·०	३·०
पिस्ता	२१·०	५१·०	१४·०	४·४	३·३
अखरोट	१५·६	६२·६	७·७	४·६	१·०
नारियल	५·	३५·६	५·४	४६·६	×
मूँगफली	३१·०	५६·०	×	१२·०	४·०

सप्तम अध्याय

आहार का पाचन तथा शोषण

मनुष्य जो आहार करता है वह ऐसे स्वरूप में होना चाहिए जो आसानी से पचकर रक्त में ग्रहण हो जाय और तब उसका फल प्राप्त हो। जो भी आहार खाया जाता है वह इन्हीं चार वर्गों के अन्दर परिगणित हो जाता है—चर्व्य, चूस्य, लेह, पेय। चर्व्य आहार वह प्रकार है जो मुख में दाँतों द्वारा पीसा जाय और इस प्रकार महीन होकर ग्रहण योग्य बने। चूस्य प्रकार वह है जो मुख द्वारा चूसा जाय, इसमें भी जलीयांश ही अधिक ग्रहण होता है। उसी के साथ आहार का अंश आमाशय में जाता है! लेह वह प्रकार है जिसमें आहार द्रव्य पानी में पीस कर महीन कर लिए जाते हैं और चाटे जाते हैं। इसमें अपेक्षाकृत जलीय अंश कम होता है। पेय वह प्रकार है जिसमें आहार द्रव्य पानी में घोल दिए जाते हैं। शर्बत आदि इस प्रकार में आते हैं।

मनुष्य ही संसार में एक ऐसा प्राणी है जिसका आहार अग्नि से पकाकर पाचन योग्य बनाया जाता है। संसार के अन्य प्राणी आहार सदैव उसी स्वाभाविक अवस्था में, जिसमें वे प्राप्त होते हैं, ग्रहण करते हैं। जन्तुओं तथा विभिन्न प्राणियों के मांस, फल, फूल, कन्द सभी कच्ची अवस्था में भोजन किये जाते हैं किन्तु मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सभ्यता उसके जीवन का एक अङ्ग है, इसी कारण उसने आहार के स्वरूप में समयानुसार परिवर्तन किए तथा उसके पाक के भी विविध प्रकार प्रचलित किए। जल के अलावा आहार के सभी द्रव्य अग्नि में पकाकर भोजन किए जाते हैं। पकाने से द्रव्य कुछ सुपाच्य हो जाते हैं। खाने में रुचि पैदा होती है, तथा पाचक रसों का कार्य अधिक शीघ्रता से होकर आहार को शोषण योग्य बना देता है।

श्रीयुत दास ने कुछ साधारण भोज्य पदार्थों के पचने का समय इस प्रकार उल्लेख किया है:—

१ से २ घंटे में पाचन

३½ छँटाक साधारण काफी, कोको, चाय।
३½ छँटाक गर्म किया हुआ दूध।
३½ छँटाक मांस की चाप।

२ से ३ घंटे में पाचन

८ छँटाक बीयर (शराब)
२ बिना पकाये अण्डे
१ प्याल चाय, दूध मलाई या कोको के साथ
२½ छँटाक उबली मछली।
३½ छँटाक गोभी।
२½ छँटाक आलू।
२½ छँटाक डबल रोटी।
१ छँटाक बिस्कुट।

३ से ४ घंटे में पाचन

४ छँटाक भुना हुआ मुर्गे का मांस।

२$\frac{3}{4}$ छँटाक बिस्कुट या रोटी।
२$\frac{3}{4}$ छँटाक सेम, चावल, गाजर।
४$\frac{1}{2}$ छँटाक उबला हुआ मांस।

भोजन का पाचन तथा शोषण कैसे ?

भोज्य पदार्थ जो भी भोजन किए जाते हैं वे अपने स्वरूप तथा अवस्थानुसार शीघ्रातिशीघ्र पचित होना प्रारम्भ हो जाते हैं। पानी तथा द्रव स्वरूपवाले पदार्थ आमाशय में पहुँचते ही शोषित होने लगते हैं। शर्करा का पाचन अत्यन्त शीघ्रता से होता है, और तत्काल शोषण भी हो जाता है। समय लगता है केवल शुष्क और कठोर आहार द्रव्यों के पाचन में।

शुष्क तथा घन आहार द्रव्य जो भी भोजन में खाये जाते हैं उन पर पाचन-क्रिया का प्रारम्भ मुख से ही होता है। जो भी आहार पचित अथवा अर्ध-पचित अवस्था में मुख में जाता है वह सर्वप्रथम दाँतों द्वारा सूक्ष्म स्वरूप में लाया जाता है। दाँतों की इस पिसाई के समय में ही लाला ग्रन्थियों से एक रस आकर इसमें मिल जाता है। इसमें एक टायलिन (Ptyalin) नामक पदार्थ रहता है जिसका प्रभाव खाद्य द्रव्यों में खासकर स्टार्च और कार्बोहाइड्रेट पर होता है। इससे ये पदार्थ रासायनिक

अन्नमादानकर्मा तु प्राणः कोष्ठं प्रकर्षति
तद्द्रवैर्भिन्नसंघातं स्नेहेन मृदुतागतम् ॥
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्यः पवनोद्वहः।
काले भुक्तं समं सम्यक् पचत्यायुर्विवृद्धये ॥

च० चि० १५

एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधः स्थितः।
पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम् ॥

च० चि० १५

दृष्टि से टूटकर दूसरे पदार्थ बनते हैं जो शरीर में अधिक घुलनशील होते हैं और वह हैं शर्करा का स्वरूप। परिवर्तन निम्न सूत्रों के अनुसार होता है : —

$$10\,(C_6H_{10}O_5)n + 4nH_2O_2$$

$$4n\ \ \underset{\text{(Maltose)}}{(C_{12}H_{22}O_{11})} + \underset{\text{(Achroo Dextrin)}}{(C_6H_{10}O_5)n} + \underset{\text{(Erythro Dextrin)}}{(C_6H_{10}O_5)n}$$
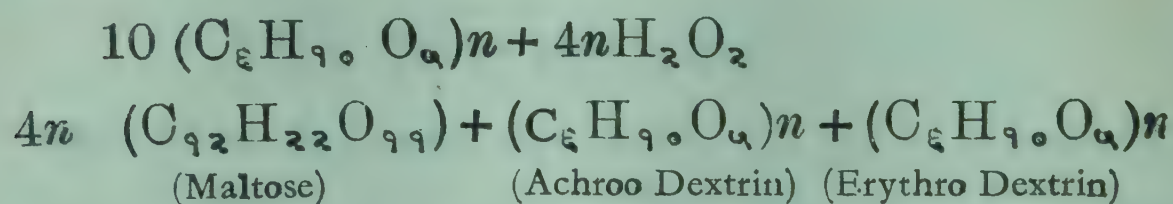
इस प्रकार दाँतों द्वारा पिस जाने पर आहार अन्न मार्ग से आगे बढ़ता है और अन्त में आमाशय में पहुँचकर जमा होता है। जल भी आमाशय में पहुँच जाता है। अन्न तथा पानी के आमाशय में आने पर उसमें गतियाँ (Churning Movements) प्रारम्भ हो जाती हैं, जिसके कारण दाँतों द्वारा पीसा हुआ और लाला रस द्वारा तोड़ा हुआ आहार का घन (Solid) भाग जल में मिल जाता है, और इस प्रकार अन्न के बहुत छोटे-छोटे कण बन जाते हैं। आमाशय अन्तः कला स्ता के नीचे अधिक संख्या में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ (Glands) रहती हैं। इनसे सम्बन्धित छोटी-छोटी नलिकायें होती हैं जो आमाशय में खुलती हैं, और ग्रन्थियों में बना हुआ अंश आमाशय में लाती हैं। इसके अतिरिक्त नमक का अम्ल (Hydrochloric Acid) भी यहाँ बनता है, जो आमाशय रस के साथ-साथ मिलकर कार्य करता है।

आमाशय रस (Gastric Juice) के मुख्य घटक

जल	९९.४४
जान्तवीय पदार्थ	.३२
नमकाम्ल	.०२ से .२
क्लोराइड	.०३ से .३
फास्फोरस—खनिज अम्ल	.०१

आमाशय रस के कार्य

इसके मुख्य पाँच कार्य होते हैं:—

१. जन्तुघ्न कार्य—साधारणतः भोजन के साथ जो भी जीवाणु शरीर में प्रविष्ठ होते हैं उन्हें नष्ट करना या उनकी शक्ति का नाश करना जिससे कि वे अपना विनाशकारी प्रभाव न कर सकें। यह कार्य उसमें मिले हुये नमक के अम्ल के कारण होता है।

२. शर्करा पर प्रभाव—स्टार्च पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता है, किन्तु जो शर्करा आहार में होती है या जो शर्करा रूप में परिवर्तित हो जाती है उस पर इसका प्रभाव होता है। इसके प्रभाव से इक्षु शर्करा का द्राक्षशर्करा तथा फलशर्करा में परिवर्तन होता है।

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O = C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

Cane Sugar   जल   द्राक्षशर्करा   फल शर्करा
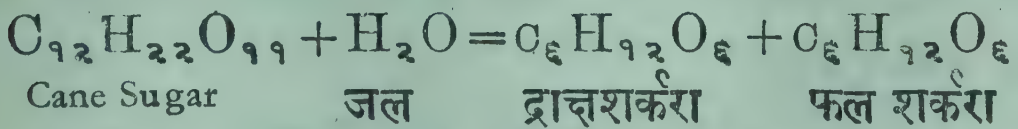
३. लाइपेज़ (Lipase) नाकक पदार्थ इस आमाशय रस में मिला रहता है जिसका प्रधान कार्य वसा पर होता है। सर्वप्रथम पेप्सिन (Pepsin) तथा नमक अम्ल के कारण प्रोटीन अंश वसा से अलग हो जाता है। फिर इस लाइपेज़ के

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः।
मधुराद्यात् कफोद्भावात् फेनभूत उदीर्यते॥
च० चि० १५

नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इतिस्मृतः।
अशितं खादितं पीतं लीढं चात्र विपच्यते॥
च० चि० २

कारण वसा टूटती है तथा Glycerol और वसा अम्ल Fatty acids नामक पदार्थों में परिणत हो जाती है। इसीलिये वसा के दूर करने का काम अधिक नहीं होता है।

४. रेनिन (Renin) नामक पदार्थ भी इसमें पाया जाता है। इसके प्रभाव से दूध जमकर दही के स्वरूप में हो जाता है।

५. आमाशय रस में एक और भी पदार्थ पाया जाता है जिसका प्रधान प्रभाव प्रोटीन पर होता है, जिससे प्रोटीन, पेप्टोन नामक स्वरूप में बदल जाता है। यह कार्य पेप्सिन तथा नमक के अम्ल के कारण होता है।

इस प्रकार आमाशय रस की क्रिया के कारण अन्न छोटे-छोटे विभागों में टूट जाता है। फिर यही छोटे-छोटे कण आमाशय द्वार से निकल कर पक्वाशय (Duodenum) में बढ़ते हैं। पक्वाशय में अन्न के आने पर पित्त-नालिका द्वारा पित्त तथा अग्नाशय रस उसमें मिल जाता है, जिससे अन्न-कण पचते हैं।

अग्न्याशय रस का संगठन

जल	९७·६%
जान्तवीय घन पदार्थ	१·८%
खनिज पदार्थ	·६%

जान्तवीय घन पदार्थ निम्न नामों से प्राप्त होते हैं :—

१. ट्रिप्सिन (Trypsin) प्रोटीन पर प्रभाव करने वाला रस जो आगे आंत्र रस के मिल जाने पर अधिक क्रियाशील हो जाता है।

२. अमाइलेज़ (Amylase) इसका प्रभाव स्टार्च पर अधिक होता है। इससे स्टार्च टूट जाता है। उसका स्वरूप माल्टोज़ (Maltose) होता है।

३. लाइपेज़ (Lipase) नामक यह तीसरा अंश पाया जाता है, जिसका प्रधान कार्य वसा पर होता है। इससे वसा टूट कर वसा अम्ल तथा ग्लिसरोल (Glycerol) में हो जाता है।

४. रेनिन—इस रस के प्रभाव से आहार में ग्रहण किया हुआ दूध जम जाता है और दही जैसा हो जाता है।

प्रोटीन पर ट्रिप्सिन रस का जो कार्य होता है वह निम्न प्रकार से तथा निम्न अवस्थाओं में होता है :—

१. इसका कार्य अन्न की क्षारीय प्रतिक्रिया होने पर अधिक कार्यशील होता है।

२. प्रोटीन पर ट्रिप्सिन का कार्य पेप्सिन की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है।

३. ऐसी प्रोटीन जो आमाशय रस से पाचित नहीं हो सकती है उस पर इसका खास प्रभाव होता है।

४. घन प्रोटीन पर इस रस का अधिक प्रभाव होता है जिससे घन प्रोटीन टूट कर छोटे-छोटे भागों में बँट जाती है।

५. अन्न पर जहाँ तक प्रभाव पेप्सिन का होता है उसके आगे इस रस का प्रभाव प्रारम्भ होता है। यह अन्न को पचाकर छोटे-छोटे कणों में तोड़ देता है अथवा टूटने लायक अवस्था पैदा कर देता है।

अमाइलेज़ (Amylase)—अग्न्याशय रस में इस गुण की प्रधानता से आहार में खाया हुआ स्टार्च टूटता है और विभिन्न शर्कराओं में परिवर्तित हो जाता है। इसका कार्य लाला श्राव की अपेक्षा अधिक क्रियाशील है, यहाँ तक कि बिना उबला हुआ स्टार्च भी इसकी क्रिया से टूट जाता है।

लाइपेज़ (Lipase)—रस के इस गुण के कारण आहार का वसा भाग अपने घटकों में टूट जाता है और वसा अम्ल तथा ग्लिसराल में बदल जाता है। वसा के तोड़ने का यह कार्य इस रस में

पित्त के सम्मिश्रण हो जाने पर अधिक क्रियाशील हो जाता है। इस रस में क्षारीय प्रमुख होने से वसा अम्लों के साथ मिलकर यहाँ साबुन भी बनता है तथा कुछ थोड़ी मात्रा में वसा तथा जल का मिश्रण भी बनता है।

(Milk Curdling) दुग्ध का जमना

पक्काशय में प्रायः दुग्ध जमा हुआ ही आता है। आमाशय में रेनिन के प्रभाव से सभी दुग्ध जम जाता है, किन्तु फिर भी दूध के जमाने का प्रभाव इस अग्न्याशय रस में भी होता है जिसका प्रभाव इस पर होता है।

अब पक्काशय से पाचित होने पर फिर अन्न कण आगे बढ़ते हैं तथा छोटी आन्त्र में पदार्पण करते हैं। क्षुद्रांत्र में अन्न कणों के आने पर यहाँ पर आंत्रिक रस (Succus entericus) उससे मिलता है तथा अभी तक के अपचित अन्न कणों को पचाने में सहायक बनता है।

आन्त्रिक रस में अनेक गुण पाये जाते हैं। ऊपर से आये हुये अपचित अन्न को अपने प्रभाव से पाचित करता है। इक्षुशर्करा को तोड़ कर द्राक्षशर्करा तथा फलशर्करा बनाने का कार्य इसका है। माल्टोज़ (Maltose) को द्राक्षशर्करा (Glucose) में बदलने वाला तथा दुग्धशर्करा बनानेवाला गुण इस आन्त्र रस में उपस्थित रहता है।

यह भी देखा जाता है कि पक्काशय की अर्धपाचित प्रोटीन इस रस के मिल जाने से अधिक क्रियाशील हो जाती है तथा कैसी भी प्रोटीन क्यों न हो यहाँ पर सभी पाचित हो जायगी। जिन प्रोटीनों का पाचन यहाँ पर नहीं हो सकता वह किसी प्रकार फिर पच नहीं सकेंगी और अन्त में मल के साथ निकल जायँगी। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि आन्त्र रस का प्रोटीन पर

अकेले कोई प्रभाव नहीं होता ; किन्तु यदि पूर्व में प्रोटीन पर अग्न्याशय रस का प्रभाव हो जाय तब आन्त्र रस की क्रिया अधिक शक्तिशाली होती है और प्रोटीन को तोड़कर उसे शोषण-योग्य बनाती है।

अन्न प्रणाली के विभिन्न रसों के कारण भोजन किये हुये अन्न का पाचन होता है और ऐसे स्वरूप में हो जाता है कि वह आसानी से आन्त्र कला द्वारा शोषित होकर रक्त में मिल जाता है तथा शरीर का पोषण करता है। क्षुद्रान्त्र तक जिन पदार्थों का पाचन नहीं हो सकता वे अन्त में अपचित ही अवस्था में मल के साथ शरीर के बाहर निकाल दिये जाते हैं।

पित्त (Bile)—पक्वाशय में अन्न के आने पर पित्त-नलिका द्वारा पित्त भी आता है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया गया है कि पित्त की पक्वाशय में उपस्थिति पाचक दृष्टि से आवश्यक नहीं। आहार के घटकों पर पित्त का कोई प्रभाव नहीं होता है ; अर्थात वह उनको पाचित करके शोषण-योग्य अवस्था में नहीं ला सकता है, किन्तु एक बात अवश्य है कि पित्त की उपस्थिति से अग्न्याशय रस का कार्य पूर्णरूप से और भलीभाँति होता है। पित्त खास कर वसा के पाचन में अग्न्याशय रस को अधिक सफलीभूत बनाता है। कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन पर साधारण रस सा प्रभाव होता है।

अन्नप्रणाली में पाचक रसों का कार्य आदि से अन्त तक यही होता है कि उन पदार्थों को इस प्रकार के स्वरूप में बदल दिया जाय कि वे आसानी से पानी में घुलनशील हो जाते हैं। तब अन्नप्रणाली की कलाओं द्वारा पानी के साथ शोषित हो जाते हैं। उस अन्न की संज्ञा रस कही जाती है। यह शोषित

रस रक्त वहानलिकाओं द्वारा सारे अंग में भ्रमित होता है और इस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग तथा कोष्ठ आदि का पोषण करता है।

परं तु पच्य मानस्य विदग्धस्याम्ल भावतः।
आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते॥
च० चि० १५

अम्लभावतः जाताम्लस्वरुपतः। (चक्रपाणि)

नाभी हृदय मध्ये च रसस्त्वम्लो व्यवस्थितः
स्वभावेन मनुष्याणां ततः पित्त विवर्धते॥
अधोनाभ्यास्तु खल्वेकः कटुकोऽवस्थितो रसः।
प्रायः श्रेष्ठतमस्तत्र प्राणिनां वर्धतेऽनिलः।
च० चि० ५

पक्काशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना।
परिपिण्डित पक्कस्य वायुः स्यात् कटुभावतः।
च० चि० १५

अष्टम अध्याय

जान्तव वर्ग (Animal Food)

अभी तक आहार के सम्बन्ध में विभिन्न अन्य दृष्टियों से विचार किया गया है। अब हम यहाँ पर उन प्रत्येक वस्तुओं का विस्तार में वर्णन करेंगे, जिनमें से आहार के विभिन्न घटक प्राप्त होते हैं अथवा प्रत्येक व्यक्ति नित्य आहार में जिन चीजों को ग्रहण करता है।

साधारणतः अमीर ग़रीब मनुष्यों के आहार में निम्न द्रव्य पाये जाते हैं, अथवा इन्हीं द्रव्यों से बने हुये अनेक पदार्थ होते

हैं :—गेहूँ का आटा, जव का आटा, चावल, अरहर, मसूर की दालें, हरे शाक, सब्जी, सूखे व हरे फल, मांस, अण्डा और दूध। इस आहार तालिका का यदि उद्गम स्थान की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाय तो वह निम्नलिखित जैसा होगा :—

१. जान्तव वर्ग :—इस वर्ग में आहार के वे द्रव्य आते हैं जिनके प्राप्ति-स्थान जन्तु होते हैं ; यथा विभिन्न जानवरों का मांस, मछली का मांस, अण्डा, दूध, चर्बी, घी आदि।

२. वानस्पतिक वर्ग—इस वर्ग में आहार के बाकी सभी घटक प्रायः समाविष्ट हो जाते हैं। इन सभी द्रव्यों का प्राप्ति स्थान विभिन्न वनस्पतियाँ होती हैं। कोई किसी वनस्पति का फल है, कोई किसी वनस्पति का पत्र है और कोई किसी वनस्पति का कन्द भाग होता है। इस वर्ग में गेहूँ, जौ चना, मक्का, दालें, शाक, सब्जी, कन्द, हरे फल, शुष्क फल आदि होते हैं।

दुग्ध (Milk) :—आहार द्रव्यों में एक दूध ही ऐसी चीज़ है जो शाकाहारी तथा मांसाहारी व्यक्तियों के आहार में समान रूप से पायी जाती है। यह एक पूर्ण आहार होता है, जिसमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी सभी द्रव्य उचित मात्रा में पाये जाते हैं और इसीलिए यह बच्चों से लेकर वृद्ध सभी आयु के व्यक्तियों का आहार होता है।

दुग्ध का स्वरूप श्वेत तथा द्रव होता है। यह स्त्री, गाय, भैंस, बकरी, गधी आदि जानवरों से पाया जाता है। इसका घनत्व १०२८ से १०३४ तक होता है। प्रतिक्रियाहीन होता है किन्तु कुछ समय पश्चात् कुछ अम्लत्व आजाने पर अम्लीय प्रतिक्रिया हो जाती है। दूध में अत्यधिक मात्रा में A जीवनीय गण पाये जाते हैं और इसी के प्रभाव से बालकों की वृद्धि होती है। बाल्यावस्था में यह एक स्वाभाविक आहार माना जाता है। B जीवनीय गण भी कुछ अंश में होते हैं किन्तु अधिक उबालने से तथा अधिक

काल तक रखने से यह नष्ट हो जाते हैं। D जीवनीयगण केवल अंश-मात्र होता है। इनके अतिरिक्त दूध में खटिक (Ca) तथा फास्फोरस (Phosphorus) भी आवश्यक मात्रा में पाये जाते हैं। लौह का अंश कम होता है।

विभिन्न जानवरों के दूध का संगठन निम्न प्रकार का होता है

	स्त्री	गाय	भैंस	बकरी	गधी
Protein मांस जातीय पदार्थ	१·७	३·५	६·१	४·२६	२·२२
Butter (Fat) वसा	३·४	३·७	७·४७	४·७८	१·६४
Lactose दुग्ध शर्करा	६·२	४·६	४·१५	४·४६	५·६६
	स्त्री	गाय	भैंस	बकरी	गधी
Salts लवण	·२	·७	·८७	·७६	·५१
जल	८७·५	८७·२	८१·४६	८५·७१	८६·६४

प्रोटीनः—दूध में जो प्रोटीन पाया जाता है वह कैसीन (Cassin) तथा लेक्टेलब्यूमिन प्रकार की होती है। कैसीन दूध में कैसिनोजन रूप में रहती है। दूध पर अम्ल के प्रभाव होने पर तथा रेनिन की क्रिया से दूध जम जाता है, इस प्रकार छैना एक भाग हो जाता है और दूसरा द्रव भाग कूर्चिका कही जाती है। छैना में कैसीन तथा वसा का भाग होता है। कूर्चिका भाग में दूध के अन्य घुलनशील लवण, शर्करा और अलब्यूमिन होती है। प्रोटीन रूपी ये पदार्थ दूध में मिश्रण बनकर रहते हैं।

वसा (Fat):—वसा का अंश दूध के द्रव में मिश्रित रहता है। दूध जब कुछ समय के लिए रख दिया जाता है तो वसा का अंश ऊपर तथा पात्र के किनारों में लाता है या जब उष्ण किया जाता है तब ऊपरी सतह पर मलाई बनती है उसी में

इसका अंश जमा हो जाता है। दूध को मशीन द्वारा या अन्य किसी भी विधि से मथने पर नैनू (Butte) के रूप में वसा का अंश अलग हो जाता है। साधारणतः अच्छे दूध में १०% मलाई (Cream) होनी चाहिए। भैंस के दूध में वह १४% तक पाई जाती है।

कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) :—दूध में यह अंश दुग्ध-शर्करा के रूप में रहता है। दुग्धशर्करा का स्वरूप इक्षुशर्करा तथा द्राक्षशर्करा से भिन्न रहता है—यद्यपि उसका रासायनिक सूत्र समान ही होता है—इसकी मात्रा दूध में ४ या ५ प्रतिशत होती है। दूध एक ऐसा द्रव पदार्थ है जिसमें जीवाणु अधिक पोषित हो सकते हैं। लैक्टिस नामक एक बैसिलस होता है जिस के प्रभाव से दूध में अम्ल गुण हो जाता है। प्रोटीन पर भी इस जीवाणु का प्रभाव होता है। दूध का खटिक (Ca) अंश इसके प्रभाव से (Calcium lactate) बन जाता है। दूध का पाचन शरीर में व्यक्ति की जठराग्नि के अनुसार होता है तथा दूध की प्रोटीन और वसा की मात्रा पर अवलम्बित होता है। अधिक वसा का अंश जिस दूध में होगा वह देर में पाचित होगा। प्रयोगों तथा अनुभवों पर यह निम्न तालिका प्रस्तुत की गई है।

१० छँटाक दूध, बिना उबाला हुआ	३½ घण्टा
१० छँटाक मलाई	३½ घण्टा
१० छँटाक दही	३ घण्टा
१० छँटाक उबला हुआ दूध	३ घण्टा

दूध का पाचन आमाशय में प्रारम्भ होता है। इसके पाचन में आमाशय रस अधिक आवश्यक होता है। पाचित दूध का शोषण पूर्ण रूप से होता है। इसका प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट अंश सभी सम्पूर्ण रूप से शोषित हो जाता है। इसी-

लिए यह पूर्ण भोजन होता है, तथा शीघ्र पाचित हो जाने के कारण और पाचन में आंत्रियों की शक्ति का नाश न होने के कारण यह अधिक उपयोगी माना जाता है।

दूध से अनेक खाद्य पदार्थ निर्मित होते हैं। उनमें मट्ठा, दही, छैना, कूर्चिका, मक्खन, घृत आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त विदेशी प्रणाली से भी चीज़, काइमिस, कैफ़ीर आदि अनेक स्वरूप की वस्तुयें बनाई जाती हैं।

मांस (Meat):– मांस भी आहार का एक घटक माना गया है। यह सभी देशों में पाया जाता है। किन्हीं देशों में उनके विभिन्न कारणों से मांस का प्रचार अधिक है और वह आहार का प्रधान भाग होता है। किन्हीं भागों में यह अवस्था नहीं – अन्य भोज्य पदार्थ अधिक होने से मांसाहार की प्रधानता नहीं है। मांसाहार में उन पशु-पक्षियों का मांस लिया जाता है जो सुलभ होता है। भारतवर्ष में बकरी, गाय, हिरन, सुअर आदि जानवर हैं जिनका मांस खाने में लोग प्रयोग करते हैं। मुर्ग़, कबूतर, बटेर, बतख़ व अन्य जलीय पक्षियों का मांस भी लोग खाते हैं।

मांसाहार में जो वस्तु भोजन में ली जाती है वह उस जीव के मांस पेशियों के टुकड़े होते हैं। उनके साथ में सौत्रिक भाग भी रहता है। पेशियों के साथ में उनकी कण्डरायें भी होती हैं। अस्थियों से उनकी मज्जा का भी ग्रहण होता है।

मांस प्रोटीन-जातीय पदार्थ है। इसमें प्रोटीन का अंश अधिक होता है। वसा भी पायी जाती है। किन्तु इसमें कार्बोहाइड्रेट का अंश नहीं होता है। इसमें A. C. तथा थोड़ी मात्रा में D. Vitamin पाया जाता है। विभिन्न जीवों के मांस का संगठन भिन्न प्रकार से होता है।

	गाय	सुअर	घोड़ा	पक्षी	मछली	मुर्गी
Water जल	७६·७	७२·६	७४·३	७०·८	७९·३	७६·२२
Solids घन	२३·३	२९·४	२५·७	२९·२	२०·७	२३·८८
Protein मांस-जातीय भाग	२०·०	१९·९	२१·६	२२·७	१८·३	१९·७२
Fat वसा	१·५	६·२	२·५	४·१	०·७	१·४२
Carbohydrate शर्करा-जातीय भाग	०·६	०·६	०·६	१·३	०·९	०·०
Salts लवण	१·२	१·१	१·०	१·१	०·८	१·३७

प्रोटीन (Protein) :—शरीर में मांस-तन्तुओं का पोषण आहार में खाई गई प्रोटीन द्वारा होता है। मांसाहार से शरीर को जो वस्तु प्राप्त होती है वह प्रोटीन ही होती है। प्रोटीन का जो स्वरूप इसमें पाया जाता है वह मायोसिन (Mayosin) कहलाती है। इस पर अम्ल (Acid) तथा क्षारों का प्रभाव पड़ता है। अम्लों के प्रभाव से मायोसिन जम जाता है। मृत्यु के पश्चात् शवों में एक प्रकार का स्तम्भन (Rigor) होता है। वह इसी प्रकार अम्ल के कारण होता है और उस अम्ल का सारकोलेक्टिक अम्ल (Sarcolactic) कहा जाता है। मायोसिन के अलावा बहुत थोड़ी मात्रा में अल्ब्यूमिन (Albumin) भी पाया जाता है। इस प्रकार प्रोटीन की मात्रा मांस में २० प्रतिशत पायी जाती है। बाकी भाग पानी तथा वसा का होता है।

वसा (Fat)—मांस में दूसरा पदार्थ वसा का है। यह चर्बी के रूप में मांस में होता है। ५ प्रतिशत इसकी मात्रा होती है, किन्तु अस्थियों की मज्जा तथा कण्डरा भाग और विभिन्न कलाओं में इसकी मात्रा अधिक होती है।

मांस में इन दो भागों के अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट नहीं पाया जाता है। खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। उनमें पोटाशियम फास्फेट अधिक होता है। मैगनीशियम और खटिक (Ca) धासारण

मात्रा में तथा नमक भी कुछ अंशों में पाया जाता है। मांसीय आहार से शरीर का पोषण कम होता है किन्तु शरीर की उत्तेजना का यह मुख्य श्रोत होता है।

मांस का पाचन—मांस शरीर के समान गुणवाला होता है। चूँकि यह जान्तवीय द्रव्य है इसलिए वानस्पतिक द्रव्यों की अपेक्षा शीघ्र पचनशील होता है। यह अधिक से अधिक मात्रा में पाचित होकर रस में मिल जाता है। केवल १५ प्रतिशत भाग मांस का ऐसा होता है जो मल रूप में बाहर निकलता है। मांस पच तो शीघ्र जाता है किन्तु सभी प्रकार का मांस एक ही समय में पाचित नहीं होता है। उसके आहार पाक-विधियों के अनुसार भिन्न-भिन्न समय में पचते हैं। लेसन नामक शास्त्रज्ञ ने प्रयोग द्वारा मांस के पाचन का कुछ समय निर्धारित किया है। निम्न तालिका में ३½ औंस मांस के पाचन का समय दिया है—

कच्चा मांस	२ घण्टे		
आधा उबला	२½ घण्टे	पूर्ण उबला	३ घण्टे
आधा भुना हुआ	३ घण्टे	पूर्ण भुना हुआ	४ घण्टे

यकृत (Liver):—जान्तवीय आहारों में मांस के समान यह भी एक उपयोगी भाग है जिसका प्रयोग किया जाता है। यह सारे शरीर का मालगुदाम (Store House) कहा जाता है। यहाँ पर खाया हुआ सभी अंश सर्वप्रथम आता है और बाद में आवश्यकता से बचा हुआ पदार्थ खास कर कार्बोहाइड्रेट का भाग यहाँ पर जमा हो जाता है और आवश्यकता पर काम आता है। यही भाग एक ऐसा है जहाँ पर A, B, C, D, सभी प्रकार के जीवनीय द्रव्य पाये जाते हैं तथा इनका प्रयोग करने पर प्रभाव भी शरीर पर देखा जाता है। भेड़, बकरी, मछली तथा पक्षियों

के यकृत में इन सभी की अधिकता पाई जाती है। इसके प्रयोग से मनुष्यों में प्रोटीन की भी कमी पूरी होती है। इनके अलावा इसमें मैंगनीज़, लौह आदि खनिज पाये जाते हैं जिनसे शरीर की वृद्धि तथा रक्त बनता है। यकृत में वसा का भी भाग होती है जो मनुष्यों के लिये अधिक उपयोगी माना जाता है। भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ A जीवनीय की कमी प्रायः आहार में होती है। लोगों के लिये यकृत ही एक वस्तु है जो कमी को पूरी कर सकता है। अतः ऐसी अवस्था में, यदि किसी प्रकार का धार्मिक बन्धन नहीं है, तो उन्हें सप्ताह में एक बार यकृत ज़रूर ही खाना चाहिए।

जीवों के अन्य अङ्ग यथा वृक्क, मस्तिष्क आदि भी अच्छे आहार गिने जाते हैं। इनमें भी अनेक आवश्यकीय पदार्थ प्राप्त होते हैं। और अन्य किसी प्रकार से उनकी प्राप्ति सम्भव नहीं होती है। मस्तिष्क भाग से कुछ जीवनीयगण तथा एक विशिष्ट प्रकार की वसा मिलती है, फ़ास्फ़ोरस भी शरीर को मिलता है। वृक्क आदि से ताम्र आदि की प्राप्ति शरीर को होती है।

मछली (Fish) :—पाचन की दृष्टि से देखा जाय तो मछली का मांस अधिक उपयोगी होता है। भारतवर्ष में इसका काफ़ी प्रचार है, किन्तु बङ्गाल प्रांत का तो यह एक नित्यप्रति का आहार बन गया है। सभी मछलियों में तथा खास करके समुद्री मछलियों में वसा (चर्बी) का अंश अधिक पाया जाता है और (A.Vitamin) अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। कुछ अनुभव बताता है कि मछली का आहार मनुष्यों में बुद्धि का विकास करता है। यह बङ्गालियों से साबित होता है।

मछलियों के अनेक भेद पाये जाते हैं। उनमें आपस में कुछ-

न-कुछ गुणों में विभेद अवश्य पाया जाता है, किन्तु ऊपर वर्णन किए हुए लाभ मछली का मांस अवश्य ही करता है। मछली का मांस विदेशों से भी टीन के डिब्बों में बन्द होकर आता है, किन्तु यदि ताज़ी मछली प्राप्त होती है तो टीन की मछली का प्रयोग कदापि उचित नहीं।

अण्डा (Egg) :—दूध तथा यकृत के बाद मांसाहार में अण्डा ही एक जान्तवीय पदार्थ है जो मनुष्य के लिये अधिक उपयोगी हो सकता है। पोषण-सम्बन्धी सभी पदार्थ इसमें पाये जाते हैं। अण्डों के ऊपर एक आवरण होता है। ऊपरी पर्त के नीचे एक श्वेत गाढ़े द्रव का आवरण होता है, उसमें प्रोटीन तथा वसा होती है। श्वेत भाग की मात्रा ६० प्रतिशत होती है। मध्य में पीला अंश रहता है, इसकी मात्रा ३० प्रतिशत होती है। इसमें भी वसा तथा प्रोटीन होती है। अण्डे का पाचन शरीर में अधिक-से-अधिक होता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह ६४ प्रतिशत है और इसीलिये तत्काल शक्ति पैदा करता है। एक विद्वान का अनुमान है कि एक अण्डे से उतनी ही शक्ति पैदा होती है जितनी एक गिलास दूध के पीने से हो सकती है।

अण्डे का पाचनः—कुछ लोग अण्डे को कच्चा ही प्रयोग करते हैं और कुछ उसे उबाल कर खाते हैं। इस प्रकार इसकी पाक-विभिन्नता के कारण इसके पाचन में भी भेद आ जाता है। वह इस प्रकार से हैः—

२ अण्डे हलके उबले हुये	१$\frac{3}{4}$ घण्टे में
२ अण्डे कच्चे	२ घण्टे में
२ अण्डे अधिक उबले हुये	३ घण्टे में
२ अण्डे का आमलेट	४ घण्टे में

अण्डे का संगठन

	जल	प्रोटीन	वसा	क्षार
श्वेत भाग	८५·७	१२·६	०·२५	०·५६
पीत भाग	५०·६	१६·२	३१·७५	१·०६

नवम् अध्याय

वनस्पति वर्ग

आहार के मुख्य द्रव्यों का अधिक अंश वानस्पतिक भाग होता है, क्योंक ये सभी द्रव्य वानस्पतियों द्वारा पैदा होते हैं। इस वर्ग के सभो द्रव्य कार्बोहाइड्रेट-प्रधान होते हैं। प्रोटीन और वसा कम मात्रा में पायी जाती है। इसमें जीवनीय द्रव्य अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इस में गेहूँ, चावल, जव, चना, अरहर, शाक, कन्द, फल आदि पदार्थ होत हैं।

इस वर्ग के द्रव्यों में जल तथा क्षार की मात्रा अधिक पायी जाती है। आमाशय में इसका पाचन नहीं होता है, किन्तु इनमें स्टार्च की अधिकता के कारण आंत्रों में यह भाग पचता है। साधारणतः वानस्पतिक पदार्थ कच्ची अवस्था में सुपाच्य नहीं होते हैं। उबालने पर सुपाच्य हो जाते हैं—कारण कि इनका स्टार्च भाग उबालने से अन्य भागों में टूटता है और अधिक पचनशील हो जाता है। किन्तु प्रोटीन में इसके बिल्कुल ही प्रतिकूल अवस्था देखी जाती है। वनस्पतियों में वसा भाग भी कम तथा निम्न श्रेणी का होता है। इसके मेदसाम्ल (Fatty acids) भी निम्न कोटि के होते हैं और इसीलिये तरलावस्था में पाये जाते हैं। यही तैल कहे जाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट, कन्द-मूल, फलों में स्टार्च रूप में पाया जाता है और जब यह स्टार्च उबालने से तथा अन्य रासायनिक क्रियाओं के द्वारा टूटता है तब उसका स्वरूप शर्करा का होता है तथा इसीलिए अधिक सुपाच्य माना जाता है।

वानस्पतिक वर्ग के अनेक विभाग किए जाते हैं। यह उनके प्राप्ति स्थान आदि के कारण भिन्न-भिन्न हैं।

१ शूक वर्ग—गेहूँ, जौ, चावल, बाजरा, मक्का।

२ शिम्बी वर्ग—उरद, मूँग, अरहर तथा सभी द्विदली अन्न।

३ कन्द-मूल वर्ग—आलू, शलजम, चुकन्दर।

४ साक-सब्जी—पालक, गोभी, तोरई, भिण्डी।

५ फल वर्ग—(क) हरे फल, अंगूर, नींबू, नारङ्गी।

(ख) शुष्क फल—अखरोट, बादाम, पिस्ता।

शूक धान्य वर्ग

कुछ वनस्पतियाँ ऐसी हैं जिनमें फल शूक युक्त होते हैं। इस प्रकार के धान्यों का संसार में आधिक्य है और संसार के बड़े जन समुदाय का भरण-पोषण इन्हीं से होता तथा हो सकता है। इस वर्ग के मुख्य-मुख्य द्रव्यों का संगटन निम्न प्रकार से है :—

धान्य	प्रोटीन	कार्बो०	वसा	क्षार	पानी
गेहूँ	१२·२४	७०·६२	२·१८	२·२४	११·८३
चावल	६·८६	७८·८	६·८	१·३२	११·०५
मक्का	६·७	७०·६	५·४	१·५	१२·५
बाजरा	१०·०	७३·३	२·२	२·६	११·६
ज्वार	१२·५	७०·०	४·०	१·५	१२·०

गेहूँ:—वानस्पतिक खाद्य द्रव्यों में गेहूँ ही एक ऐसा द्रव्य है जो सार्वभौमिक है। सभी देशों में इसका प्रयोग होता है। दूध के समान इसमें शरीर के सभी पोषक घटक नहीं पाये जाते हैं

फिर भी अन्य वानस्पतिक आहारों से यह अधिक पोषक तथा आसानी से ग्राह्य है।

गेहूँ का संगठन :—गेहूँ के ऊपर चार पर्त पाये जाते हैं। मध्य में गेहूँ का मुख्य भाग रहता है। पीसने पर जो भूसी निकलती है वह इसी के ऊपरी चार पर्त होते हैं। भूसी में सेलुलोज़ अधिक रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रोटीन १५ प्रतिशत, वसा ३·५%और लवण ५·७% भाग होते हैं। कोष्टबद्धता के लिए भूसी का प्रयोग अधिक लाभदायक होता है। गेहूँ के मध्य भाग में ही प्रधान अंश रहता है। यह समस्त गेहूँ का ८० या ८५ प्रतिशत भाग होता है। रासायनिक दृष्टि से देखा जाय तो इसमें ग्लूटेन (Gluten नामक प्रोटीन तथा अधिक भाग स्टार्च का पाया जाता है।

गेहूँ का प्रयोग सदैव पीसकर आटे के रूप में ही किया जाता है। वैसे उबालकर भी थोड़ी मात्रा में लोग आहार में प्रयुक्त करते हैं। गेहूँ का पिसा हुआ आटा कई प्रकार का होता है। यह भेद उसकी पिसाई के कारण होता है तथा साथ ही उसकी पौष्टिकता में भेद देखा जाता है। यह भेद निम्न तालिका से स्पष्ट हो जावेगा :—

	प्रो०	कार्बो०	वसा	क्षार
मैदा	९·७३	८०·८३	५·२२	०·४८
आटा	१२·०३	६४·७९	२·२५	०·६८
	१४·२६	४३·३३	१·५०	०·६१
भूसी	१५·१५	२८·५३	८·४२	४·८८

तालिका से स्पष्ट है कि भूसी भाग में वसा तथा क्षार अंश अधिक होता है इसलिये ऐसे आटे में, जिसकी भूसी निकाल दी गयी हो, आहार के लिए प्रयोग करते समय स्नेह तथा क्षार का कुछ भाग मिला देना चाहिये।

ऊपर जैसा कह चुके हैं कि गेहूँ सम्पूर्ण आहार नहीं है इसमें अनेक घटकों की कमी है। फिर भी पंजाबी तथा अन्य निवासी जिनका यही मुख्य खाद्य पदार्थ है काफ़ी स्वस्थ और अधिक परिश्रमी और क्रियाशील पाये जाते हैं। अनुभव बताता है कि ये पंजाबी आहार में गेहूँ के साथ दूध अथवा दुग्ध के विकारों हरे शाक, सब्ज़ी और फलों का अधिक प्रयोग करते हैं। अतः आहार में गेहूँ से जो कमी रह जाती है वह सहायक द्रव्यों से पूर्ण हो जाती है।

भारतीयों का उत्तम आहार गेहूँ का मोटा आटा, हाथ के कुटे हुये चावल, दूध या दूध के अन्य पदार्थ, दाल, हरे शाक, सब्जी, फल हो सकते हैं। मांस भी थोड़ी मात्रा में एक महीने में दो-तीन बार प्रयुक्त करना लाभदायक होगा। इस प्रकार का आहार स्वास्थ्य तथा अन्य दृष्टियों से अत्यन्त उत्तम माना जा सकता है।

गेहूँ के आटे से बनी हुई निम्न वस्तुयें प्रायः प्रयोग में लायी जाती हैं—रोटी या चपाती, बिस्कुट, पावरोटी।

यव (Barley) :—भारतवर्ष में यव भी अधिक मात्रा में पैदा होता है, तथा वह निर्धन जनता का आहार भी है। रासायनिक संगठन की दृष्टि से यह गेहूँ से भिन्न है। इसमें प्रोटीन भिन्न प्रकार की होती है, जो शरीर में कम कार्य करती है। स्टार्च अंश प्रधान है जो पोषण का कार्य करता है। पाचन में भी गेहूँ की अपेक्षा यह हल्का होता है। इसीलिये रोगों के पथ्य में इसकी रोटियों का विधान किया जाता है तथा जब यूष के रूप में भी (Barley Water) प्रयोग किया जाता है।

जब से रासायनिक क्रियायें करके माल्ट (Malt) बनता है जो अधिक शक्तिशाली तथा शीघ्र पचनशील होता है। इसीसे बियर नामक मद्य बनती है।

बाजरा (Millet) :—यह भी राजपूताना, मेवाड़, बीकानेर आदि प्रान्तों का मुख्य खाद्य द्रव्य है। पौष्टिकता की दृष्टि से यह गेहूँ के समान नहीं किन्तु A व B जीवनीय गणों की अधिकता इसमें पायी जाती है। प्रोटीन भी इसमें एक विशिष्ट श्रेणी की पायी जाती है। इसे अमीर ग़रीब सभी श्रेणी के लोग आहार में प्रयोग करते हैं। किन्तु उत्तरी-पूर्वी देशों में पैदा हुआ बाजरा जल-वायु की भिन्नता के कारण उतना पौष्टिक नहीं होता है। इस प्रान्त में केवल यह निर्धन जनता द्वारा ही खाने के काम में लाया जाता है।

चावल (Rice) :—भारतवर्ष के बङ्गाल, आसाम, मद्रास, विहार, सी० पी० आदि प्रान्तों के निवासियों का चावल मुख्य खाद्य पदार्थ है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में यह अप्रधान रूप से खाया जाता है। इस प्रकार भारत के ⅓ निवासी इस पर अपना जीवन-यापन करते हैं।

अन्य शूक धान्यों के समान चावल में भी वही कमियाँ पाई जाती हैं। अर्थात् प्रोटीन की कमी—लवण, जीवनीय द्रव्य तथा वसा का अंश कम पाया जाता है। इसमें केवल कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में होता है और वह भी स्टार्च रूप में रहता है।

चावल बाजार में दो प्रकार का मिलता है, एक प्रकार वह जो मिलों में कूटकर पालिश किया जाता ह तब वह लोगों को उपयोग करने के लिये मिलता है। दूसरा प्रकार वह जो लोग अपने आप स्वयं कूट लेते हैं और पकाकर खाते हैं। इसमें दूसरा प्रकार प्रथम की अपेक्षा अधिक पौष्टिक तथा स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होता है। इस प्रकार के चावल में B जीवनीय गण मौजूद रहता है जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होता है। प्रथम प्रकार में पालिश हो जाने से ये सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, केवल स्टार्च शरीर के लिये प्राप्त होता है। ऐसे चावल के लगातार

प्रयोग से B जीवनीय द्रव्य की कमी से वातबलाशक रोग (Beri Beri) हो जाता है।

चावल शरीर में अन्य धान्यों की अपेक्षा शीघ्र पचनशील है। नवीन चावलों की अपेक्षा पुराने चावल अधिक पचनशील होते हैं। इसलिए पुराने चावल का भात तथा खिचड़ी रोगियों को पथ्य में दिया जाता है। शीघ्र पचनशील होने के कारण चावलों का पाचन होकर आंत्रों में ही शोषण हो जाता है; तथा इसका बहुत थोड़े अंशों में किट्ट बनता है जो मल के रूप में बाहर निकल जाता है।

जिन प्रान्तों में चावल ही प्रधान खाद्य है वहाँ के निवासी चावल की पौष्टिकता कम होने के कारण अधिक मात्रा में चावल का भोजन करते हैं। इसका फल यह होता है कि प्रायः सभी व्यक्तियों का आमाशय अधिक मात्रा में चावल प्रतिदिन ग्रहण करने के कारण आकार में विस्तृत हो जाता है। आंत्रों का भी विस्तार हो जाता है। इसका दूसरा कारण यह भी होता है कि चावल खाने के कारण आंत्रों में अपानवायु प्रायः विकृत होती है और उसी के कारण आंत्रों का कुछ बिस्तार हो जाता है। इन निवासियों का चावल आहार होने के कारण अन्न-प्रणाली (Digestive system) की कुछ ऐसी दशा हो जाती है कि वह शाक, सब्जी, दाल आदि वस्तुयें जो चावल के साथ प्रयोग की जाती है भली-भाँति शोषण नहीं कर पाता।

चावल में पौष्टिक पदार्थों की कमी के कारण अपेक्षाकृत इसके प्रयोग करनेवाले निवासियों का स्वास्थ्य क्षीण रहता है। शरोर के गठन में वह दुबले-पतले रहते हैं तथा परिश्रम करने की क्षमता इनमें अधिक नहीं पायी जाती है।

चावल प्रधानतः खानेवाले व्यक्तियों को चाहिए कि वे अपने आहार में चावल के साथ दूध तथा दूध के अनेक द्रव्यों का

प्रयोग अधिक करें—शाक, सब्जी, दाल उचित मात्रा में आहार में प्रतिदिन होनी चाहिए। थोड़ी मात्रा में आटा भी उन्हें आहार में शामिल करना चाहिए। इस प्रकार से सभी प्रकार की कमियाँ पूरी हो जाती हैं और स्वास्थ्य स्वाभाविक रूप से स्थिर रहता है।

मक्का (Maize):—इसका भी प्रयोग भारत के कुछ प्रांतों में तथा इटैली, अमरीका आदि में होता है। योरुप तथा अमरीका में उत्पन्न होनेवाली मक्का में वसा तथा प्रोटीन दोनों ही काफी मात्रा में पाये जाते हैं; किन्तु भारत में उत्पन्न होनेवाली मक्का उतनी उत्तम श्रेणी की नहीं होती है। मक्का में पायी जाने वाली प्रोटीन ग्लूटिन (Glutin) श्रेणी की नहीं होती इसीलिए इसके आटे की रोटी नहीं बन सकती। इसकी प्रोटीन दुष्पाच्य होती है, इसीलिये श्रमी व्यक्तियों के लिए इसका प्रयोग विहित है, किन्तु दुर्बल तथा मन्दाग्नि विकार से पीड़ित व्यक्तियों के लिए इसका आहार उचित नहीं।

शिम्बी वर्ग :—इस वर्ग में उन वनस्पतियों के फल या बीजों का ग्रहण होता है जिनका प्रयोग भोजन में दाल के रूप में किया जाता है। इन धान्यों में नाइट्रोजन का अंश अधिक पाया जाता है, जो प्रोटीन का एक घटक होता है। दालों में पाई जानेवाली प्रोटीन उत्तम प्रकार की नहीं होती किन्तु फिर भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसी के द्वारा जान्तवीय प्रोटीन की कमी पूरी होती है। भारतवर्ष में विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न दालों का प्रयोग किया जाता है। पञ्जाब, राजपूताना तथा पश्चिमी युक्त प्रान्त में उरद की दाल का प्रयोग होता है। पूर्वी युक्तप्रान्त, मदरास आदि प्रान्तों में अरहर का अधिक प्रयोग होता है। मसूर, मूँग, चना, मटर आदि की दालें भी यथास्थान प्रयोग की जाती हैं।

दालों का संगठन प्रोटीन-प्रधान होता है। इनमें प्रोटीन भी

लेग्यूमिन (Legumin) प्रकार की होती है। कार्बोहाइड्रेट कम मात्रा में पाया जाता है। इसका अनुपात ७:२ से १:४ तक होता है। विभिन्न दालों का रासायनिक संगठन निम्न प्रकार से होता है :—

द्रव्य	प्रोटीन	कार्बो०	वसा	क्षार
मसूर	२५·४७	५५·०३	३·००	३·३३
अरहर	२१·६७	५४·२७	३·३३	५·५०
चना	१६·६४	५१·१३	४·३१	३·७२
मूँग	२३·६१	५३·४५	२·६६	३·५७
उरद	२२·३३	५५·२२	१·६५	३·००
मटर	२४·६०	६२·००	१·००	२·६०

अन्य धान्यों की अपेक्षा दालों में प्रोटीन भाग अधिक होने के कारण ये पौष्टिक होती हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से विद्वानों का अनुभव है कि आधी छटाक दाल उतनी ही शक्ति शरीर को देती है जितनी शक्ति आधी छटाक मांस से प्राप्त होती है या एक छटाक अण्डा या साढ़े तीन छटाक दुग्ध से प्राप्त होती है।

आहार में दाल का प्रयोग विभिन्न रूपों से किया जाता है। कुछ दालों को पीसकर रोटी बनाते हैं। कहीं दाल को पीसकर विभिन्न पदार्थ (मीठे तथा नमकीन) तैयार करते हैं। अधिकांश लोग इनको पानी में उबालकर द्रवावस्था में रोटी तथा भात (चावल) के साथ खाने में प्रयोग करते हैं। रोटी तथा दाल की पिष्टी के पदार्थों की अपेक्षा द्रवस्वरूप में दाल अधिक सुपाच्य होती है। किन्तु यदि दाल चूनेवाले खारी पानी में पकाई जाती है तो वह पकती भी कठिनाई से है और शरीर में पाचन में अत्यन्त कठिनता होती है। मीठे पानी में पकायी हुई दाल अधिक सुस्वादु और पचनशील होती है।

अरहर :—दालों में अधिक प्रयोग की जानेवाली दाल अरहर है। इसका प्रयोग मध्य तथा पूर्वी युक्त प्रान्त, विहार, मदरास सी० पी० आदि प्रान्तों में होता है। संगठन की दृष्टि से इसमें क्षार अधिक और वसा अंश द्वितीय श्रेणी में पाया जाता है। पचन में मूँग की दाल के अतिरिक्त सभी दालों से हल्की तथा उष्ण प्रभाव करनेवाली होती है।

उरद (माष) :—पश्चिमी यू० पी०, पञ्जाब, राजपूताना आदि प्रदेशों में इसका प्रयोग अधिकता से होता है। अरहर की अपेक्षा इसमें प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट का अंश अधिक होता है, तथा पाचन में भी कुछ गुरु है। प्रभाव इसका शीत होता है।

मसूर :—इसका दैनिक प्रयोग बहुत अधिक नहीं होता है। प्रोटीन अंश सभी दालों से इसमें अधिक पाया जाता है। इसका उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों में प्रयोग होता है।

मूँग :—इसका प्रयोग भी बहुत अधिक नहीं होता है। इसमें सभी अंश स्वाभाविक रूप से कम होते हैं। यह अन्य दालों की अपेक्षा पाक में हल्की होती है इसीलिए पथ्य में इसका व्यवहार बहुतायत से होता है।

कन्दमूल वर्ग

इस वर्ग में उन वस्तुओं का ग्रहण होता है जो प्रधानतः पृथ्वी के नीचे ही पोषित होती हैं। आलू, अरुई, शकरकन्द, मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर, प्याज आदि ऐसी चीज़ें हैं जो इस वर्ग में आती हैं। यह कार्बोहाइड्रेट-प्रधान वस्तु होती है। वसा तथा प्रोटीन थोड़े अंश में पाया जाता है। पोटैशियम के क्षार इसमें अधिक होते हैं। जीवनीयगण C प्रधान होता है, B भी कुछ अंशों में पाया जाता है।

लेग्यूमिन (Legumin) प्रकार की होती है। कार्बोहाइड्रेट कम मात्रा में पाया जाता है। इसका अनुपात ७:२ से १:४ तक होता है। विभिन्न दालों का रासायनिक संगठन निम्न प्रकार से होता है :—

द्रव्य	प्रोटीन	कार्बो०	वसा	क्षार
मसूर	२५·४७	५५·०३	३·००	३·३३
अरहर	२१·६७	५४·२७	३·३३	५·५०
चना	१६·६४	५१·१३	४·३१	३·७२
मूँग	२३·६१	५३·४५	२·६६	३·५७
उरद	२२·३३	५५·२२	१·६५	३·००
मटर	२४·६०	६२·००	१·००	२·६०

अन्य धान्यों की अपेक्षा दालों में प्रोटीन भाग अधिक होने के कारण ये पौष्टिक होती हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से विद्वानों का अनुभव है कि आधी छटाक दाल उतनी ही शक्ति शरीर को देती है जितनी शक्ति आधी छटाक मांस से प्राप्त होती है या एक छटाक अण्डा या साढ़े तीन छटाक दुग्ध से प्राप्त होती है।

आहार में दाल का प्रयोग विभिन्न रूपों से किया जाता है। कुछ दालों को पीसकर रोटी बनाते हैं। कहीं दाल को पीसकर विभिन्न पदार्थ (मीठे तथा नमकीन) तैयार करते हैं। अधिकांश लोग इनको पानी में उबालकर द्रवावस्था में रोटी तथा भात (चावल) के साथ खाने में प्रयोग करते हैं। रोटी तथा दाल की पिष्टी के पदार्थों की अपेक्षा द्रवस्वरूप में दाल अधिक सुपाच्य होती है। किन्तु यदि दाल चूनेवाले खारी पानी में पकाई जाती है तो वह पकती भी कठिनाई से है और शरीर में पाचन में अत्यन्त कठिनता होती है। मीठे पानी में पकायी हुई दाल अधिक सुस्वादु और पचनशील होती है।

अरहर :—दालों में अधिक प्रयोग की जानेवाली दाल अरहर है। इसका प्रयोग मध्य तथा पूर्वी युक्त प्रान्त, विहार, मदरास सी० पी० आदि प्रान्तों में होता है। संगठन की दृष्टि से इसमें क्षार अधिक और वसा अंश द्वितीय श्रेणी में पाया जाता है। पचन में मूँग की दाल के अतिरिक्त सभी दालों से हल्की तथा उष्ण प्रभाव करनेवाली होती है।

उरद (माष) :—पश्चिमी यू० पी०, पञ्जाब, राजपूताना आदि प्रदेशों में इसका प्रयोग अधिकता से होता है। अरहर की अपेक्षा इसमें प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट का अंश अधिक होता है, तथा पाचन में भी कुछ गुरु है। प्रभाव इसका शीत होता है।

मसूर :—इसका दैनिक प्रयोग बहुत अधिक नहीं होता है। प्रोटीन अंश सभी दालों से इसमें अधिक पाया जाता है। इसका उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों में प्रयोग होता है।

मूँग :—इसका प्रयोग भी बहुत अधिक नहीं होता है। इसमें सभी अंश स्वाभाविक रूप से कम होते हैं। यह अन्य दालों की अपेक्षा पाक में हल्की होती है इसीलिए पथ्य में इसका व्यवहार बहुतायत से होता है।

कन्दमूल वर्ग

इस वर्ग में उन वस्तुओं का ग्रहण होता है जो प्रधानतः पृथ्वी के नीचे ही पोषित होती हैं। आलू, अरुई, शकरकन्द, मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर, प्याज आदि ऐसी चीज़ें हैं जो इस वर्ग में आती हैं। यह कार्बोहाइड्रेट-प्रधान वस्तु होती है। वसा तथा प्रोटीन थोड़े अंश में पाया जाता है। पोटैशियम के क्षार इसमें अधिक होते हैं। जीवनीयगण C प्रधान होता है, B भी कुछ अंशों में पाया जाता है।

संगठन तालिका

कन्द	जल	प्रो०	वसा	कार्बो०	क्षार
आलू	७६.७	१.२	०.१	१६.७	०.६
रतालू	७२.६	१.६	०.५	२४.३	०.७
प्याज	८६.१	१.६	०.३	८.३	०.६
मूली	६०.८	१.४	०.१	४.६	०.६
गाजर	८५.७	०.५	०.३	१०.१	०.६
साबूदाना	१८.०	×	×	८२.०	×
अरारोट	१६.६३	०.८	×	८३.३	०.२७

आलू :— कन्दों में आलू सर्वश्रेष्ठ है। इसका संसार में सब से अधिक प्रयोग होता है। इसके रासायनिक संगठन में कार्बोहाइड्रेट तथा स्टार्च प्रधान हैं। प्रोटीन तथा वसा सूक्ष्म मात्रा में पाई जाती हैं। इसमें पोटैशियम साइट्रेट नामक क्षार अधिक मात्रा में पाया जाता है अतः यह स्कर्वी प्रतिरोधक कहा जाता है। केवल आलू ही किसी का मुख्य खाद्य नहीं हो सकता; किन्तु प्रोटीन और वसा का आवश्यक अंश मिला देने से यह काफ़ी शक्तिदायक आहार बन सकता है और शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के लिए स्वाभाविक आहार हो सकता है।

आलू स्वभावतः कुछ दुष्पाच्य होता है। यह किस प्रकार आलू पकाए गये हैं इस पर अधिक अवलम्बित रहता है। तैल या घी में तले हुये पाक में गुरु होता है, किन्तु अग्नि में भूना या पानी में उबाला हुआ शीघ्र पचने वाला होता है। इसीलिए यह रोगी तथा मन्दाग्निवाले व्यक्ति के लिये वर्जित है।

मांसाहार में क्षारों की कमी होती है इसीलिए क्षारों की पूर्ति के लिये मांसाहार में आलू का उपयोग लाभकारी होता है।

रतालू :—यह कन्द भी कार्बोहाइड्रेट-प्रधान होती है।

इसमें १० प्रतिशत भाग शर्करा का होता है, इसलिये यह आलू की अपेक्षा अधिक मीठो स्वाद को होती है।

अरारोट :—मरांटाऔरांडिनेसो (Maranta aurandinacae) नामक वृक्ष की जड़ों से बनाई जाती है। यह शुद्ध प्रकार का स्टार्च होता है। इसके बिस्कुट बनाये जाते हैं। यह अत्यन्त सुपाच्य पदार्थ है इसीलिये पथ्य रूप में रोगियों को उनको उनकी दुर्बलावस्था में दिया जा सकता है।

साबूदाना :—यह भी 'सैगोपाय' नामक वृक्ष की जड़ों से प्राप्त किया जाता है। यह भी स्वरूप में स्टार्च ही होता है। इसके कण अरारोट के कणों से अधिक बड़े होते हैं। यह भी अधिक पाच्य होता है।

मूली:—यह भी कन्दों में परिगणित होती है। इसमें केवल दो भाग होते हैं। पृथ्वी के ऊपर होने वाला भाग केवल पत्रों का होता है। बाकी भाग ज़मीन के अन्दर ही कन्द रूप में बढ़ता है। इसमें जीवनीय द्रव्यों के अलावा क्षार अधिक राशि में पाया जाता है। सेलुलोज का अंश अधिक होने के कारण यह विबन्ध तथा अर्श के रोगों में अधिक लाभदायक होती है।

गाजर :—मूली के समान यह भी कन्द होती है किन्तु इसकी जड़ का ही प्रयोग किया जाता है। स्टार्च में शर्करा का अंश अधिक होने के कारण सुस्वादु होता है तथा लवणों व क्षार के अलावा इसमें लौह का अंश अधिक मात्रा में पाया जाता है। चुकन्दर भी इन्हीं सभी गुणों वाला होता है और उसी वर्ग का है। इन सभी कन्दों का प्रयोग हमेशा हरी अवस्था में करना लाभप्रद होता है।

प्याज :—यह भी कन्द वर्ग ही की वस्तु है किन्तु इसका स्वरूप अन्य कन्दों की अपेक्षा भिन्न होता है। इसमें प्रत्येक कन्द की जड़ भाग के ऊपर गोल कन्द की तरह वस्तु वर्धित होती है।

इस गोल भाग में कली की पंखुरियों की तरह पर्त एक के बाद एक होते हैं। इन्ही पर्तों में प्याज के सभी लाभकारी पदार्थ स्थित रहते हैं।

उपर्युक्त संगठन तालिका द्वारा ज्ञात है कि इसमें प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट आदि पदार्थ काफ़ी मात्रा में मौजूद रहते हैं। इसलिये पौष्टिकता की दृष्टि से यह एक उत्तम आहार घटक होता है। यह आहार का मुख्य पदार्थ नहीं हो सकता किन्तु शाक आदि में इसका उचित प्रयोग किया जा सकता है। पौष्टिक गुणों के अलावा भी प्याज़ तथा लहसुन जन्तुघ्न भी माने जाते हैं।

शाक वर्ग

इस वर्ग में वनस्पतियों के फल, फूल, पत्ती आदि का प्रयोग आहार के साथ शाक (तरकारी) के रूप में किया जाता है। इसमें टमाटर, तोरई, भिण्डी, पालक, गोभी, कच्चा केला, परवल आदि वस्तुयें आती हैं।

शाकों की संगठन तालिका

शाक	जल	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	वसा	क्षार
गोभी	८९.६	१.८	६.९	०.४	१.३
फूल गोभी	९०.७	२.२	५.९	०.४	०.८
टमाटर	९४.३	०.८	३.१	०.४	०.५
ककड़ी	९५.४	०.८	३.१	०.२	०.५
केला	७५.३	१.३	२२.०	०.६	०.८

ये शाक-सब्जी पौष्टिकता की दृष्टि से हीन होते हैं। किन्तु इनमें क्षार तथा जीवनीय द्रव्य अधिक पाये जाते हैं जो शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं।

प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट आदि द्वारा रक्त मनुष्य के शरीर में बनता है। वह अम्लत्व-प्रधान होता है किन्तु इन्हीं शाकों

द्वारा प्राप्त क्षारों से क्षारीय गुणवाला होता है। रक्त का क्षारीय होना शरीर की स्वस्थावस्था के लिये आवश्यक है। रक्त में अम्लों की अधिकता विकृतावस्था होती है। शाकों में सेलुलोज की अधिकता होती है। यह आंत्रों में पचित नहीं होती है और मल रूप में बाहर निकलती है। आंत्रों में सेलुलोज की अधिक मात्रा होने के कारण आंत्रों की हलचल (Intestinal movements) प्रारम्भ होती है तथा मलावरोध (Constipation) को दूर करती है।

संक्षेप मे शाकों के निम्न कार्य होते हैं—

१—शाक क्षार-प्रधान (कैलशियम, सोडियम के लवण) होते हैं, जो शरीर की क्षार की कमी को पूरा करते हैं। आहार के मुख्य द्रव्य (मांस, धान्य) आदि क्षार की कमी वाले होते हैं।

२—इन क्षारों के कारण रक्त स्वाभाविक क्षारीय प्रतिक्रिया-शीलवाला होता है। अन्य आहार द्रव्यों से अम्लीयता बढ़ती है।

३—शाकों की कुछ प्रोटीन धान्यों को प्रोटीन को पाचन योग्य बनाती हैं।

४—शाक जीवनीय-द्रव्य-प्रधान पदार्थ हैं।

५—शाकों में सेलुलोज अधिक होने के कारण आंत्रों का कार्य अधिक होता है तथा मलों को निकालने में सहायभूत होता है।

६—शाकों में कार्बोहाइड्रेट की कमी होती है इस कारण यह मधुमेह (Diabetes) के रोगियों के उचित आहार होते हैं।

७—क्षारों की अधिकता से ये मूत्रल होते हैं।

कुछ ध्यान देने योग्य बातें:—

शाक, सब्जी सदैव ही ताजी प्रयोग करनी चाहिए, बासी सड़ी-गली सब्जी कभी प्रयोग नहीं करनी चाहिए। गन्दे पानी

द्वारा उपजाई हुई सब्जी हमेशा कीड़े व मकोड़ों से युक्त होती है। इसीलिये कच्ची सब्जी को हमेशा साफ करके तथा भली-भाँति पानी से धोकर काम में लाना चाहिए। पानी, घी तथा तैल में भली-भाँति उसे पका लेना चाहिए, इससे वह स्वादिष्ट तथा रुचिकर हो जाती है।

टमाटर :—यह फल कच्चा तथा पकाकर दोनों ही दशाओं में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग आज कल बहुतायत से किया जा रहा है। इसमें जीवनीय द्रव्य अधिकता से तथा अधिक संख्या में पाये जाते हैं। जीवनीय द्रव्यों के अलावा लौह, खटिक आदि क्षार भी मिलते हैं। यह बेरी-बेरी, स्कर्वी, रिकेट आदि रोगों में अधिक लाभदायक देखा गया है। इसे सुखाकर भी रक्खा जा सकता है और शुष्क फल की तरह प्रयोग किया जा सकता है। यह अत्यन्त सस्ती वस्तु है और इसलिए जन-साधारण के प्रयोग में आनेवाली वस्तु हो सकती है।

गोभी (फूल):—यह अन्य सभी शाकों की अपेक्षा पाक में हलका होता है। इसके अधिक प्रयोग से शरीर में आक्जलेट (Oxalate) प्रकार के लवण बनते हैं, जिनसे अश्मरी का रोग हो जाने की आशंका रहती है। यह खेतों में अधिक खाद देकर तैयार किया जाता है इसलिए जीवाणुओं (Germs) से युक्त हो सकता है; अतः प्रयोग करने से पूर्व भली-भाँति इसको जन्तुघ्न द्रव्यों से जन्तुरहित कर लेना चाहिए।

पालकः—यह पत्तों का शाक होता है। इसमें B व C जीवनीय गण अधिक होते हैं जिससे शरीर को लाभ होता है। साथ ही इसमें लौह का अंश अधिक पाया जाता है जो शरीर के लिये विशेष उपयोगी होता है। इसके प्रयोग से मलावरोध की शिकायत दूर होती है।

परवलः -भारत में इसका प्रयोग शाकों में अधिक होता

है। यह पाक में अत्यन्त लघु है जिससे रोगियों को पथ्य में दिया जाता है। रुचिकर तथा भूख को बढ़ानेवाला है। हरे-शाकों के सभी गुण इसमें बहुतायत से प्राप्त होते हैं।

लौकी :—परवल की तरह यह भी पचने में हल्की होती है। अतः पथ्य है।

केला :—सभी सब्ज़ियों की अपेक्षा केला अधिक पौष्टिक है। शाक में कच्चा केला काम में लाया जाता है, और ख़ासकर अतिसार होने पर। केले में क्षारत्व अधिक होने से आंत्रों पर जन्तु-नाशक प्रभाव होता है। केले का सामान्य-संगठन निम्न है—

अलब्यूमिन १·१५, मेद १·८७, कार्बो० १६·८२, सेलुलोज़ ०·५०, फ़ास्फ़ोरिक अम्ल १·२७ प्रतिशत भाग होता है।

फल वर्ग

खाद्य द्रव्यों में फल एक महत्वपूर्ण वर्ग है। सामान्यतः फल भी शाकों जैसा ही कार्य करते हैं। फिर भी इनमें पौष्टिक अंश फलों से अधिक होता है। दैनिक आहार में इनका निश्चित अंश होना आवश्यक है।

फल अनेक प्रकार के होते हैं। नींबू, नारङ्गी आम्ल-गुण-प्रधान हैं। टमाटर आदि में पोटैशियम, सोडियम तथा कैल-शियम के लवण पाये जाते हैं। अंगूर, सेव आदि मधुर होते हैं इसलिये इनमें फलशर्करा का भाग पाया जाता है। इसलिये इन विभिन्न प्रकार के फलों द्वारा शरीर की अनेक पूर्तियाँ क्षार, अम्ल तथा फलशर्करा के रूप में होती हैं।

फल ही एक ऐसी वस्तु है जो स्वाभाविक रूप में ग्रहण की जाती है। दूध भी ग्रहण किया जा सकता है किन्तु उससे अनेक व्याधियाँ होने की सम्भावना होती है जब कि फलों से नहीं। फल सदैव ताज़े और सुन्दर पके हुये लेना चाहिए। सड़े-गले

फलों को त्याग देना उचित है। फलों को खाने के पूर्व उन्हें अच्छी प्रकार धोकर प्रयोग करना चाहिए।

नींबू :—इसमें साइट्रिक, गैलिक तथा फास्फोरिक अम्ल विशुद्ध अवस्था में तथा सोडियम और पोटैशियम के क्षार रहते हैं। नींबू का रस रक्त को क्षारीय रखता है। स्कर्वी और आमवात में विशेष लाभ करता है। आंत्रों में विशूचिका तथा आंत्रिक ज्वर के जीवाणुओं को नींबू रस नष्ट करता है। जठराग्नि के दुर्बल होने पर नींबू रस अन्न पचाने में सहायता देता है।

आम :—भारतवर्ष की यह एक विशेष निधि है। आम कच्चो तथा पक्की दोनों दशाओं में प्रयोग किया जाता है। दोनों अवस्थाओं में इसमें संगठन-सम्बन्धी कुछ भेद होता है। वह निम्न प्रकार है—

	जल	प्रो०	कार्बो०	वसा	क्षार	अम्ल	सेलु०
कच्चा आम	९०·६९	०·५६	३·३८	×	०·२७	१·९३	×
पक्का आम	७५·५०	१·८०	१७·५८	०·७५	१·२३	×	३·७३

कच्चे आम में अम्लगुण होने से नींबूवाली सभी वस्तुयें पायी जाती हैं। कच्चे आम में स्कर्वी रोग नाश करने की क्षमता होती है। यह ताप, लू आदि को भी शान्त करता है और इसलिये कच्चे आम को अग्नि में भूनकर प्रानक बनाया जाता है।

पक्का आम मधुर-गुण प्रधान होता है पौष्टिक तथा मलावरोध को नष्ट करनेवाला होता है।

अनार :—इसके रस में टैनिक अम्ल, तथा शर्करा होती है, इसलिये यह कषाय रस और मधुर होता है। इसके छिलके में भी टैनिक अम्ल, टायनेट तथा पेलेट्राइन नामक एक विशिष्ट तत्व (Alkaloid) रहता है जो बच्चों के अतिसार तथा स्फीत-कृमियों में विशेष लाभदायक होता है।

पपीता :—यह एक रुचिकर तथा स्वादिष्ट फल है। इसके

दूध में एक प्रकार का पदार्थ पाया जाता है जो प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा आदि को पचाने में सहायभूत होता है। इसीलिये अग्निमांद्य, मलावरोध, अम्लपित्त आदि रोगों में विशेष लाभदायक माना जाता है। मांसाहारियों के लिये यह विशेष उपयोग करने की चीज़ होती है। प्रभाव इसका अत्यन्त उष्ण होता है।

द्राक्षा :—इसमें द्राक्षशर्करा नामक एक मधुर पदार्थ पाया जाता है। इसके अलावा इसमें पोटैशियम-बाइटार्ट्रेट, चूने के टार्ट्रेट, गैलिक अम्ल आदि चीजें पायी जाती हैं। यह पथ्यकर, शीतल, दस्तावर तथा तृषा शान्त करनेवाला होता है। शुष्क द्राक्षा ही मुनक्का होता है। इसको दूध के साथ लेने से दस्तावर होता है।

केला:—केले का संगठन पूर्व में लिख चुके हैं। पका हुआ केला भी अत्यन्त लाभदायक तथा पौष्टिक होता है। दूध के साथ प्रयोग करने से पूर्ण आहार होता है।

शुष्क फल (मेवा)

इस वर्ग में उन फलों की गणना की जाती है जो सुखाकर प्रयोग किये जाते हैं। इस वर्ग के फलों का सामान्य संगठन यह है:—प्रोटीन १५ से २०%, वसा ५० से ६०%, कार्बोहाइड्रेट ६ से १२%, सेलुलोज़ ३ से ५%, खनिजक्षार १% तथा जल ४ से ५% शुष्क फलों में प्रोटीन तथा वसा का अंश अधिक होता है। इसीलिये यह अधिक पौष्टिक तथा दुष्पाच्य होते हैं। देखा भी जाता है कि जब लोगों की अग्नि अधिक तेज़ होती है तभी इनका उपयोग भी किया जाता है। अर्थात् शीतकाल में जब अधिक ताप की आवश्यकता शरीर को होती है और शरीर अधिक अन्न आदि पचाने में समर्थ होता है तभी इनका भी प्रयोग अधिकता से होता है।

संगठन तालिका

	प्रो०	कार्बो०	वसा	लवण	जल
बादाम	२४·०	१०·०	५४·०	३·०	६·०
पिस्ता	२१·०	१४·०	५१·०	३·३	४·४
अखरोट	१५·६	७·७	८६·६	१·०	४·६
नारियल	५·०	४·५	३५·६	×	४६·६
मूँगफली	३१·०	×	५६·०	४·०	१·१०

दशम अध्याय

मासले तथा अचार

आहार में मसालों तथा अचार आदि की भी उपस्थिति होती है, जिसके कारण आहार चटपटा, खट्टा स्वादुवाला हो जाता है। इन मसालों व अचार की आवश्यकता शरीर-वृद्धि के लिए ज़रूर नहीं है। इनके बिना भी शरीर की स्वाभाविक वृद्धि होती रह सकती है, किन्तु फिर भी उनका उपयोग आहार को सुस्वादु बनाने के लिये किया जाता है। इससे भोजन में रुचि पैदा होती है, भोजन के पाचन में सहायता मिलती है तथा आंत्रों में जन्तु-नाशन कार्य भी होता है। इन मसालों में उत्तेजन गुण होता है इसलिये आंत्रों के परिचालन (Peristalsis) के प्रारम्भ होने में सहायता मिलती है।

स्वस्थावस्था में मनुष्य के लिये इस प्रकार के उत्तेज्य पदार्थों का आहार के साथ उपयोग आवश्यक नहीं है। बहुत थोड़ी मात्रा में तो उपयोग किया भी जा सकता है किन्तु अधिक मात्रा में उपयोग स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। मसाले का

लगातार सेवन थोड़े दिन पाचकाग्नि को बढ़ाता है किन्तु अन्त में जठराग्नि की मन्दता, अम्लपित्त इत्यादि रोग होते हैं।

मसाले में प्रयोग की जानेवाली वस्तुयें निम्न हैं—लालमिर्च, धनिया, जीरा, हल्दी, दालचीनी, कालीमिर्च, राई, लौंग, इलायची, मेथी, हींग, अदरख, सोंठ, इमली आदि। इन्हीं में कुछ चीजें गर्म मसाले के नाम से ली जाती हैं।

आचार भी इन्हीं मसालों को नींबू, इमली, आम आदि खट्टे पदार्थों में मिलाकर तैयार किये जाते हैं। इनसे भी भोजन को स्वादयुक्त बनाना ध्येय होता है।

इन अचार तथा मसालों से भोजन स्वादयुक्त अवश्य बन जाता है किन्तु यह स्वाद कृत्रिम तथा हानिकारक है। भोजन को अच्छी तरह चबाकर खाने से भी एक विशिष्ट प्रकार का स्वाद पैदा होता है, जो स्वास्थ्य के लिये लाभदायक साबित होता है। इसलिये मसालों द्वारा स्वाद बनाने के बजाय लोगों को भोजन चबाकर स्वादयुक्त बनाने की आदत डालनी चाहिये। इससे स्वास्थ्य भी उत्तम रहेगा तथा मसाले व अचारों को प्रयोग करने की आदत न पड़ेगी तथा उसके दुष्परिणामों से बचाव होगा।

शर्कराः—

गुड़, खांड़, ईख तथा गन्ने के रस से तैयार की जाती है। आजकल अन्य और भी वनस्पतियाँ होती हैं जिनसे शर्करा तैयार की जाती है। शर्करा में ९४% सैकरोज (Saccharose) और २% पानी का होता है। अशुद्ध शर्करा में नाइट्रोजन जातीय पदार्थों के होने से यह सड़ने लगती है। शुद्ध शर्करा, श्वेत स्फटिकाकार, सूखी तथा पूर्णरूप से जल में घुलनशील होती है।

आहार में प्रयुक्त होने पर यह आमाशय तथा आंत्रों में शोषित होने लगती है। शोषित होने के समय शर्करा, द्राक्ष-शर्करा (Glucose) तथा फलशर्करा (Fructose) में परिणत होती है।

शर्करा का मुख्य भाग यकृत में ग्लाइकोजन (Glycogen) के रूप में संचित रहता है।

शर्करा क्षीण शक्ति को पूरा करती है तथा श्रम को नाश करती है। इसीलिये भारतवर्ष में शर्करा तथा उसके विकारों की अतिथियों को देने की प्रथा थी, और अब भी है, जो विशुद्ध वैज्ञानिक साबित होती है।

शर्करा तथा शर्करा जातीय पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए। अधिक मात्रा में प्रयोग से मूत्रजन्य रोग (प्रमेह) होते हैं। मांसाहारी व्यक्तियों को भी मांस के साथ शर्करा का प्रयोग हानिकारक होता है।

एकादश अध्याय

पानक वर्ग

इस वर्ग में उन वस्तुओं का समावेश किया जाता है जो आहार के साथ द्रवरूप में ग्रहण की जाती हैं। उदाहरणस्वरूप हम जल, विशिष्ट जल, चाय, काफी, मद्य आदि ले सकते हैं। इन पानक द्रव्यों में अधिक ऐसे हैं जो भोजन के साथ प्रयुक्त होते हैं, कुछ ऐसे हैं जो भोजनानन्तर काल में प्रयोग में लाये जाते हैं।

जल :—यह एक द्रव्य पदार्थ है जो नदी, कुओं आदि अनेक श्रोतों से प्राप्त होता है। यही एक ऐसा पानक है जो भोजन के साथ तथा भोजनानन्तर कालों में प्रत्येक समय प्यास निवारणार्थ प्रयुक्त किया जाता है। भारतवष में अन्य पानकों की अपेक्षा इसी का उपयोग सर्वसाधारण द्वारा अधिक होता है।

इसके सम्बन्ध में पूर्व में लिख चुके हैं। जल भोजन के

पाचन के लिए आवश्यक है। भोजन का पाचन तथा शोषण जल द्वारा ही होता है। साधारणतः जल का शोषण आंत्रों द्वारा ही होता है। एक बार में पिया हुआ १० छटाक जल १ घण्टे बाद आमाशय से बाहर हो जाता है।

भोजन के साथ जल के पीने का कोई नियम नहीं है। कुछ भोजन के पूर्व ही जल पीने की राय देते हैं। इससे आमाशय का प्रक्षालन होगा, भोजन के समय प्यास अधिक नहीं लगती, तथा लालाश्राव अधिक मात्रा में भोजन के लिये प्राप्त होता है। कुछ लोग भोजन के बाद जल पीने की राय देते हैं। इससे आमाशय रस आदि पानी की अधिकता से पतले नहीं होते और भोजन को पचाने में अधिक समर्थ होते हैं। कुछ का कहना है कि जल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जब आवश्यकता प्रतीत हो तभी पीते रहना चाहिए।

जल की आवश्यकता देश और काल पर अधिक निर्भर करती है। शीत देशों की अपेक्षा ऊष्ण देशों में और शीत ऋतुओं की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में प्यास अधिक लगती है, क्योंकि ऊष्णता के कारण शरीर का द्रवांश स्वेद आदि के रूप में अधिक निकलता रहता है। अतः शरीर के द्रवांश की स्वाभाविक कमी होने पर प्यास मालूम होती है तथा तत्काल ही उसकी पूर्ति आवश्यक होती है। ग्रीष्म काल में जब प्यास लगे उस समय पानी पीना अवश्य चाहिए।

विशिष्ट जल (Mineral & Aerated Waters) :—इसमें कुछ ऐसे जलों का ग्रहण होता है जो कृत्रिम तथा अकृत्रिम रूप से तैयार किये जाते हैं। अकृत्रिम जलों में विशेष-विशेष स्थानों से प्राप्त होनेवाले जलों का संग्रह होता है। ये जल अपने विशिष्ट स्थानिक गुणों के कारण शरीर को लाभ पहुँचाते हैं। कृत्रिम प्रकार के जलों में—जल में सोडा, खटिक, मैग्नीशियम आदि

लवण डालकर नींबू, सन्तरे आदि का खुशबूदार अर्क वग़ैरह मिलाकर तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार के जल भी अपने विशिष्ट लवणों के कारण भोजन को पचाने तथा अन्य उदर-सम्बन्धी विकारों पर लाभ करते हैं।

कृत्रिम विशिष्ट जल कुछ खारी अथवा लवण स्वादुवाले ही होते हैं, किन्तु कुछ का स्वादु मधुर होता है। उनमें शकर के सत्व (सैक्रीन) का कुछ अंश मिला दिया जाता है।

जल के अलावा चाय, काफी, मद्य आदि भी दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं :—

१—वह जो बिना किण्डवीकरण (Fermentation) के तैयार होते हैं यथा चाय, काफ़ी।

२—वह जो किण्डवीकरण द्वारा तैयार होते हैं यथा मद्य।

चाय :—इसका प्रयोग संसार की अधिकांश जनता करती है तथा दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता है। यह एक प्रकार की कैमेलिया थिया (Camellia thea) नामक वनस्पति की पत्तियों से तैयार की जाती है।

इसका संगठन निम्न प्रकार से है।

थीन	७·८ प्रतिशत
अलब्यूमिन	२·६ प्रतिशत
डेक्स्ट्रीन	६·७ प्रतिशत
सेलुलोज	२२·० प्रतिशत
टैनिन	१५·० प्रतिशत
क्षार	५·४ प्रतिशत

चाय में मुख्य थीन (Theine) व कैफीन (Caffeine) नामक पदार्थ तथा टैनिन (Tannin) ही वह वस्तुयें हैं जिनका प्रभाव शरीर पर होता है। थीन तथा कैफीन का प्रभाव मस्तिष्क पर उत्तेजक होता है। टैनिन का प्रभाव विषैला होता है। थीन

और कैफीन जल में शीघ्र घुलनशील होते हैं और टैनिन देर में घुलता है।

उत्तम चाय सदैव फाण्ट (Infusion) के स्वरूप में होती है। चाय का क्वाथ बनाने तथा चाय पत्ती को अधिक देर तक गर्म पानी में पड़े रहने पर टैनिन पदार्थ जल में घुल जाता है, और विषैला प्रभाव करता है। फाण्ट बनाने में टैनिन नहीं आता, केवल थीन और कैफीन अंश ही आते हैं जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं कहे जा सकते हैं।

चाय की पत्ती उबालने से तथा पत्ती को अधिक काल तक गर्म जल में रखने से निम्न भेद होते हैं जो तालिका द्वारा निर्देशित किये गये हैं।

द्रव्य	५ मि०	१० मि०	२० मि०	४० मि०
सत्थीन	२१.७	२५.३	२६.८	२८.१
कैफ़ीन	१.१	१.३	१.१६	१.१५
टैनिक अम्ल	६.८	८.५	११.७	१६.३
नाइट्रोजन	१.११	१.१५	१.११	१.४
क्षार	३.५२	४.०६	४.१५	४.४८

तालिका से स्पष्ट है कि अधिक देर तक उबालने से टैनिन ही एक ऐसा पदार्थ है जो अन्य की अपेक्षा अधिक बढ़ता है और इसीलिये वह हानिकारक प्रभाव शरीर पर पैदा करता है। टैनिक अम्ल की अधिकतावाली चाय का प्रयोग करने से आंत्र मात्र की श्लेष्मल कला मोटी पड़ जाती है अतः रस का शोषण नहीं होता। बिवन्ध अधिक पढ़ता है।

काफी:—यह कैफ़िया अरेबिका (Caffea arabica) नामक वृक्ष के वीजों को भूनकर तैयार की जाती है। इस चूर्ण को गर्म पानी तथा दूध और शर्करा में मिलाकर चाय की तरह

पेय तैयार किया जाता है। इसका संगठन निम्न प्रकार का होता है:—

कैफ़ीन १·२१, टैनिन ३२·७६, डैक्ट्रीन ८·५५, नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ १२·०७ जल १०·२३।

काफ़ी में कैफ़ीन नामक विशिष्ट पदार्थ पाया जाता है और उसी का प्रभाव हृदय तथा मस्तिष्क पर उत्तेजक स्वरूप का होता है। टैनिन का अंश नहीं होता है। चाय की तरह इससे कोई हानिकारक प्रभाव नहीं होता किन्तु अधिक मात्रा में काफी के प्रयोग से मस्तिष्क तथा हृदय की विकृतियाँ देखी जाती हैं।

कोको:—इसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। यह थियोब्रोमा कोका (Theobroma coca) नामक वृक्ष के बीज से बनाया जाता है। इसका संगठन निम्न प्रकार का है:—

वसा ४२·६, सेकोज़ १·२, थीओब्रोमिन ०·६७, अल्ब्यूमिनाइड्स १०·५, ग्लूकोज़ १·०, स्टार्च ४·२, सेलुलोज़ १४·४, क्षार ३·७, जल ५·१।

इसमें प्रमुख उत्तेज्य वस्तु थीओब्रोमिन है, किन्तु यह अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में होती है अतः इसका उत्तेजक प्रभाव चाय व काफ़ी जैसा नहीं होता है। किन्तु इनकी अपेक्षा पौष्टिक गुण अधिक है।

मद्य:—यह मद्यांश युक्त द्रव पानक होता है। पश्चिमी देशों में इसका प्रयोग अधिकता से होता है। भारतवर्ष में बहुत थोड़ी संख्या में लोग इसका प्रयोग करते हैं।

यह वस्तु शर्करा-युक्त द्रव पदार्थों पर किण्डवीकरण पद्धति द्वारा तैयार की जाती है। किण्डवीकरण क्रिया से शर्करा कार्बन-डाइआक्साइड और मद्य (Alcohol) में परिवर्तित हो जाती है। कार्बन-डाइआक्साइड तो वायु में मिल जाती है, किन्तु मद्यांश द्रव में ही स्थित रहता है और उसी का प्रभाव प्रयोग

करने पर दिखाई देता है। किण्डवीकरण क्रिया का रासायनिक सूत्रों में निर्देश निम्न प्रकार से है:—

$$C_6H_{12}O_6 = 2C_2H_5OH + 2CO_2$$

मद्यांश की विभिन्न मात्राओं के अनुसार इसके कई विभाग किये गये हैं:—

१—बियर (Beer	३--४ प्रतिशत
२—मद्य (Wine)	१०--२५ प्रतिशत
३—सुरा (Spirit)	४०--५० प्रतिशत

बियर (Beer) :—इसको जौ की शराब भी कहते हैं। इसमें जौ को पानी में भिगोकर अंकुरित करते हैं फिर उसे सुखाकर भूनकर सड़ाते है और किण्डवीकरण क्रिया होती है। इससे जौ का शर्करा भाग टूट जाता है तथा मद्य और कार्बन-डाइआक्साइड में परिवर्तित हो जाता है।

इसकी कई जातियाँ होती हैं। एल, पोर्टर, स्टाउट आदि प्रकार मुख्य हैं। इनमें १ से १० प्रतिशत तक मद्यांश रहता है।

मद्य (Wine) :—यह भी विभिन्न पदार्थों की शर्कराओं पर किण्डवीकरण क्रिया द्वारा तैयार किये जाते हैं, तथा जल्दी नष्ट न हो जायँ इसलिये उनमें सुरा (Spirit) का कुछ अंश मिलाया जाता है।

किण्डवीकरण क्रिया द्वारा वस्तुओं में मद्याँश अधिक से अधिक १४ प्रतिशत तक ही तैयार होता है, बाकी अंश ऊपर से मिलाया जाता है।

मुख्य-मुख्य मद्यों की निम्न तालिका हैं:—

क्लेरेट	८--१३ प्रतिशत
बर्गेंडी	८--१३ प्रतिशत
शैम्पेन	६--१२ प्रतिशत
हॉक्क	६--१२ प्रतिशत

शेरी	१५--२२ प्रतिशत
पोर्ट	१५--२० प्रतिशत

सुरा (Spirit) :—विभिन्न मद्यों (Wines) को फिर स्रावण पद्धति द्वारा परिश्रुत करने पर सुरा तयार होती है। सुराओं में जो अधिक प्रमुख हैं वह हैं—ह्विस्की (Whisky), ब्राण्डी (Brandy), रम(Rum), जिन (Gin)। इनमें मद्यांश अधिक होता है। सुरा के जो विभिन्न प्रकार बताये गये हैं उनमें प्रत्येक में मद्यांश भिन्न-भिन्न मात्रा में रहता है।

ह्विस्की (Whisky) :—गेहूँ, जौ आदि अन्न को सड़ाकर किण्डवीकरण पद्धति द्वारा यह तैयार की जाती है। इसमें कुछ ऐसी वस्तुयें भी मिल जाती हैं जो इसकी उत्तेजक शक्ति को बढ़ा देती हैं। इसमें मद्यांश की मात्रा ४० से ५० प्रतिशत तक होती है।

ब्राण्डी (Brandy) :—अंगूर रस से जो मद्य (Wines) तैयार होंती हैं उन्हीं के पुनः स्रावण से ब्राण्डी तैयार होती है। इसमें मद्यांश की मात्रा ४६ से ५५ प्रतिशत तक होती है। मद्यांश के अलावा कुछ अन्य रासायनिक वस्तुयें भी रहती हैं। फ्रान्स की ब्राण्डी सुविख्यात है।

रम (Rum) :—यह विशेषकर ज़मैका द्वीप में तैयार होती है। इसमें मद्यांश ५० से ६० प्रतिशत तक होता है।

जिन (Gin) :—माल्ट तथा जौ के मिश्रण से यह तैयार होती है। गन्ध पैदा करने के लिये माल्ट में नारङ्गी के छिलके, इलायची इत्यादि भी मिला दी जाती हैं। इसमें मद्यांश ४०--५० प्रतिशत तक होता है।

यह उपरोक्त विभाग पाश्चात्य लोगों में प्रचलित मद्य के हैं। भारतवर्ष की अपेक्षा जलवायु की दृष्टि से वे शीत-प्रधान हैं। वहाँ उनकी आवश्यकता है। मद्य उनके आहार का एक विशिष्ट

अङ्ग होता है, जो सर्वसाधारण अमीर, ग़रीब, स्त्री, पुरुष और वृद्ध तथा बालकों द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं। मद्यों का यह विभाग उनके मद्यांश की मात्रा पर तथा किन-किन आधारों द्वारा वह तैयार किये जाते हैं, इस पर होता है।

भारतवर्ष एक ऊष्ण देश है, मद्य की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं, इसीलिये वह आहार में स्थान नहीं पा सका। इसका अधिकांश प्रचार यहाँ निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक निहित था, किन्तु इधर पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार से मद्य की खपत बढ़ रही है। फिर भी इतना प्रचार कभी भी नहीं हो सकता कि आहार में भी अधिकांश बर्ता जा सके।

मद्य का शरीर पर क्या प्रभाव होता है? और कैसे होता है? मद्य एक ऐसी वस्तु है जो शीघ्र ही द्रव रूप में होने के कारण शोषित हो जाती है। मुख से लेकर सारी अन्न प्रणाली में जितनी श्लेष्मल कला है, उसमें मद्य तत्काल शोषित हो जाता है। मद्य का अधिकांश भाग तो मुख द्वारा ही शोषित होता है। अधिक मात्रा में मद्य पान करने पर आमाशय तक पहुँचने की नौबत आती है। श्लेष्मल कला द्वारा शोषित हो जाने पर मद्य रक्त द्वारा सारे शरीर में पहुँचता है और अपना प्रभाव प्रदर्शित करता है। देखा गया है कि मद्य १५ मिनट में शोषित होकर अपना प्रभाव शरीर पर डालता है।

मद्य का थोड़ी मात्रा में प्रयोग सभी अङ्गों का उत्तेजन करता है। लाला रस भी अधिक मात्रा में श्रवित होती है। आमाशय रस भी अधिक मात्रा में जमा होता है तथा आमाशय को गति बढ़ जाती है। भूख अधिक मालूम होती है तथा अन्न हज़म होने लगता है।

किन्तु जब मद्य अधिक मात्रा में लगातार प्रयोग किया जाता है तो शारीरिक अङ्गों में विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। मद्य के

अधिक सेवन से आमाशय रस का स्राव कम होता है तथा श्लेष्मा का स्राव होने लगता है। मद्य के लगातार सेवन से आमाशय की पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है फलस्वरूप अग्नि-मांद्य होता है। मद्य पीने पर शोषित होकर सर्व प्रथम यकृत के सम्पर्क में आता है। यकृत के कोष्ठ [Cells] मद्य के प्रभाव से शोथयुक्त हो जाते हैं। यदि लगातार सेवन इसी अवस्था में होता रहता है तो यकृतदाल्युदर [Cirrhosis] और वसा अपक्रान्ति [Fatty Degeneration] हो जाती है।

मद्य के रक्त में मिल जाने पर हीमोग्लोबिन से आक्सीजन प्रथक् नहीं हो पाती है इसीलिये शरीर में आक्सीजन की आवश्यक मात्रा प्राप्त नहीं होती है। फल इसका यह होता है कि वसा और कार्बोहाइडे्ट का ज्वलन भलीभाँति नहीं हो पाता, और इसीलिये शरीर में दोनों की वृद्धि होती है।

मद्य हृदय तथा मस्तिष्क को उत्तेजित करता है, और इस तरह शारीरिक श्रम के अनुभव को नष्ट करता है। मद्य का प्रभाव दूर हो जाने पर फल विपरीत देखा गया है, क्योंकि थकावट की मात्रा बढ़ जाती है। मद्य का अधिक काल तक लगातार प्रयोग जीर्ण वृक्क-शोथ पैदा करता है। मद्य में कुछ अंशों में कार्बोहाइडे्ट होने के कारण पौष्टिक अंश भी पाया जाता है। इससे शारीरिक ताप की भी पैदाइश होती है। किन्तु इसकी अधिक मात्रा ग्रहण नहीं की जा सकती, अतः इससे सभी आहार-जन्य पूर्ति नहीं की जा सकती है। थोड़ी मात्रा में प्रयोग करने पर उत्तेजना-सम्बन्धी कुछ लाभ अवश्य प्रतीत होते हैं। किन्तु इसकी आदत पड़ जाने पर दिन-प्रति-दिन इसकी वृद्धि ही होती जाती है, और अधिक मात्रा में प्रयोग सदैव स्वास्थ्य के लिये हानिकारक साबित होत है।

तमाखू

यद्यपि यह किसी पानक वर्ग में परिगणित नहीं होती किन्तु फिर भी अधिक मात्रा में प्रयोग मनुष्यों द्वारा होता है, इसलिये कुछ वर्णन कर देना अनुचित नहीं।

तमाखू का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में संसार की अधिकांश जनता करती है। इसके प्रयोग के कुछ स्वरूप ये हैं:—गुड़ाखू, चुरुट, सिगरेट, बीड़ी, दोखता, गोली, जरदा, सुरती, नस्य, पकी तमाखू तथा सूखी तमाखू।

तमाखू में एक विषैला तत्व रहता है जो निकोटीन (Nicotine) कहा जाता है। यह इतना तीव्र विष है कि यदि मनुष्यों द्वारा दिन भर की प्रयुक्त तमाखू एक बार में प्रयोग की जाय तो उसमें प्राप्त नीकोटीन उस मनुष्य के मारण के लिये समर्थ हो जायगा।

तमाखू भी अन्य मादक द्रव्यों की तरह उत्तेजक पदार्थ है। इसकी भी उत्तेजना क्षणिक रहती है। बाद में अधिक सुस्ती हो जाती है। इसके अलावा तमाखू के प्रयोग से मुख गन्दा तथा बदबूदार ही रहता है। तमाखू पीने वाले व्यक्तियों को सदैव श्वासयंत्र की बीमारियाँ (खाँसी आदि) रहती हैं। अधिक मात्रा में तमाखू का प्रयोग हृदय, मस्तिष्क को विकृत कर देता है। काम से अनिच्छा, स्मृतिनाश, अवशाद, शिरःशूल, अनिद्रा तथा दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) की विकृतियाँ मुख्यतया देखी जाती हैं।

ऐसा ही प्रभाव शरीर पर अफ़ीम, भाँग, चरस, गाँजा आदि अन्य मादक द्रव्यों का भी होता है।

मादक पदार्थों के बारे में सामान्य नियमः—

१—सब मादक पदार्थ प्रारम्भ में शरीर को आराम देनेवाले होते हैं और इसीलिये लोग उनका प्रयोग करते हैं।

२—उनके लगातार प्रयोग से उनके आराम देने की शक्ति कम हो जाती है और वह शरीर के एक आवश्यक घटक बन जाते हैं।

३—मादक द्रव्यों का प्रारंभ करके छोड़ देना कठिन होता है।

४—मादक द्रव्यों से अङ्ग स्वाभाविकतया अधिक उत्तेजित होते हैं।

५—उत्तेजना समाप्त होने पर उनकी स्वाभाविक शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

६—हृदय, मस्तिष्क, फुफ्फुस आदि अङ्गों पर मादक द्रव्यों का नाशक प्रभाव होने पर परिणाम अकाल मृत्यु होता है।

द्वादश अध्याय

भारतीय आहार तालिका

भारत एक ऐसा देश है जहाँ पर व्यक्तियों का आहार उनके देश, काल, धर्म के अनुसार वनस्पति-प्रधान है। किन्तु सभी प्रान्तों की आहार तालिका समान नहीं। उत्तरीय तथा पश्चिमीय प्रान्तों का प्रधान खाद्य पदार्थ गेहूँ तथा विभिन्न दालें हैं। पूर्वीय प्रान्तों का प्रधान खाद्य पदार्थ चावल है। दक्षिण में भी चावल ही प्रधानतः भोज्य पदार्थ है।

हम लोग पूर्व में विचार कर चुके हैं कि शरीर की रक्षा तथा जीवन के लिये कितनी मात्रा में कौन-सा घटक होना चाहिए। एक ही वस्तु से शरीर की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। अनुभव इसके प्रतिकूल है। अतः निश्चय ही शरीर धारण के लिये प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा आदि घटकों का उनकी

उचित मात्रा में होना अत्यावश्यक है। तभी शरीर की उचित वृद्धि तथा विकास सम्भव हो सकता है।

अब हमें यह देखना है कि भारत के विभिन्न प्रान्तों की आहार तालिका कहाँ तक उचित है, क्योंकि उसी के अनुसार एक बड़े समुदाय का पालन होता है। यदि यह तालिका समयोपयोगी नहीं तथा व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकती है तो उसका उचित प्रतिकार करना सरकार, समाज तथा प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है।

देखा जाता है कि एक साधारण पंजाबी का आहार गेहूँ की रोटी, उड़द की दाल, शाक, सब्जी होता है। मांस का अधिक प्रचार नहीं अर्थात् वह उसका साधारण खाद्य नहीं। दुग्ध की प्रचुर मात्रा होने के कारण अभी तक यह आहार ग्राह्य था। इस प्रकार इन आहार द्रव्यों से सभी आवश्यक घटकों की मात्रा पूरी हो जाती थी। बङ्गाल प्रान्त में चावल प्रधान खाद्य है। गेहूँ का प्रयोग नहीं करते। दाल बहुत थोड़ी ही मात्रा—शाक, सब्जी की बहुतायत रहती है। साथ-ही-साथ मछली का मांस प्रत्येक बङ्गाली के आहार का एक आवश्यक अङ्ग होता है। इस प्रकार बङ्गालियों का आहार कार्बोहाइड्रेट-प्रधान होते हुये भी प्रोटीन की पूर्ति मछली के मांस द्वारा होती है। युक्त प्रान्त पूरब तथा पश्चिम के मध्य में है तथा यहाँ के लोगों का आहार दोनों के मिश्रण जैसा है। गेहूँ रोटियों के रूप में तथा चावल भी भोजन में एक युक्त प्रान्तीय निवासी के पाया जायगा। दाल, शाक, सब्जी तथा दूध भी आहार का आवश्यक अङ्ग रहता है। अतः शरीर पोषण दृष्टि से प्रायः आवश्यक घटक इस प्रकार प्राप्त हो जाते हैं दक्षिण प्रान्त का भी आहार चावल-प्रधान होता है। दाल आदि अनेक चीजें रहती हैं। इसमें दूध तथा दही का विशेष अंश पाया जाता है। मांस आदि नहीं के बराबर होता है। इसलिये

प्रोटीन अंश स्वाभाविक रूप से कम मात्रा में शरीर में प्रविष्ट होता है।

किन्तु भारत की यह पूर्वावस्था अब नहीं। भारतवासियों की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गयी है। लोगों को एक बार भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। थोड़ा बहुत एक बार खाकर केवल जीवन को धारण करने का स्वांग किया जाता है। क्योंकि देखा गया है कि भारत की असंख्य जनता दिन में एक बार रोटी के टुकड़ों को नमक के साथ खाकर क्षुधा को शान्त करती है। यह उनकी आर्थिक दशा का स्वरूप है। ऐसे आहार से स्वास्थ्य की रक्षा कैसे और कितने काल तक हो सकती है? अतः हमको आर्थिक दशा का दृष्टिकोण रखकर ही आहार के खाद्य द्रव्यों के सम्बन्ध में विचार करना उचित है। तभी वह सफल और उपयोगी हो सकते हैं।

अधिकांश ग्रामीण भारतीयों की आर्थिक दशा अत्यंत हीन है। इस हीनता का प्रभाव उनके आहार पर पड़ता है। जो कुछ भी वे शरीर पोषण के लिये भोजन करते हैं वह केवल उनके जीवन धारण मात्र के लिये हो सकता है। वह स्वास्थ्य की दृष्टि से समुचित आहार कदापि नहीं हो सकता। देखा जाता है कि अधिक संख्या में निम्न श्रेणी के लोग केवल जौ, चना, ज्वार, मक्का आदि की रोटियाँ ही आहार में प्रधानतः लेते हैं। दाल, शाक में एक ही चीज होगी। कभी-कभी वह भी अनुपस्थित। चावल भी कभी-कभी लिया जाता है। शहरों में लोगों को चावल पालिश किया हुआ मिलता है जो पौष्टिकता की दृष्टि से निकृष्ट है। दूध तथा विकार भी साधारणतः प्रतिदिन आहार में नहीं ही होते। मांस-मछली साधारण भोजन नहीं। इस प्रकार विदित होता है कि अधिकांश जनता का आहार उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें सिद्धान्ततः

सभी आवश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं हो पाता। प्रोटीन की उचित मात्रा प्राप्त नहीं होती। वसा भी आवश्यक मात्रा में प्राप्त नहीं होती है। इस आहार में अपेक्षाकृत कार्बोहाइड्रेट का अंश अधिक रहता है। जीवनीय द्रव्य की भी कमी होती है। इस तरह इन आहारों मे व्यक्तियों की क्षुधा तो अवश्य शान्त हो जाती है किन्तु उनमें पोषण पदार्थों की कमी के कारण शरीर का स्वास्थ्य उचित स्वरूप का नहीं हो सकता। लोग अधिक शक्ति-शाली नहीं होते हैं। शक्तिहीन होने तथा अधिक कार्य करने के कारण लोगों का जीवन अल्पकालीन होता जा रहा है।

भारतवर्ष ऊष्ण जलवायु वाला देश है। यहाँ पर शीत देश के निवासियों के अनुसार यहाँ पर अधिक तापोत्पादक पदार्थों की तथा अधिक मात्रा में आहार द्रव्यों की भोजन में आवश्यकता नहीं होती है। शीत देश में वहाँ की जलवायु के सहन के लिये शरीर को अधिक ताप का ग्रहण करना पड़ता है और इसीलिये अधिक तापोत्पादक पदार्थों का ग्रहण आहार तालिका में किया जाता है। किन्तु भारतवर्ष के लिये वह तालिका अवश्य उचित नहीं हो सकती है। ऊष्ण-प्रधान देश होने से अधिक ताप शरीर को आवश्यक नहीं होता है तथा अधिक तापोत्पादक पदार्थों की आहार में आवश्यकता नहीं होती है। ऊष्ण देश निवासी व्यक्ति अधिक काल तक परिश्रम करने के लिये क्षम्य नहीं होते हैं। उनमें थकान बहुत शीघ्रता से आ जाती है। अतः उनमें अधिक शक्ति क्षीण होने का कोई कारण नहीं होता न उसकी पूर्ति ही आवश्यक होती है। जो शक्ति क्षीण होती भी है वह कार्बोहाइड्रेट द्वारा पूरी हो जा सकती है। इसी-लिए ज्ञात होता है कि भारतीयों का आहार कार्बोहाइड्रेट-प्रधान होने का यही एक कारण है।

प्रोटीन शरीर पोषण के लिये एक आवश्यक घटक होता है

और थोड़ी मात्रा में वह आहार में शामिल रहता है। इस प्रकार वह आवश्यकता की पूर्ति करता रहता है। आहार में वसा का अंश अपेक्षाकृत अधिक रहता ह, और वह वानस्पतिक तल रूप मे यथा सरसों, तिल तैल शरीर में जाता है। उसी के द्वारा शरीर की वसा सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति होती जाती है।

अतः अब आवश्यकता है कि भारतीय जनता के स्वास्थ्य की रक्षा की जाय। यह तभी सम्भव है जब जनता की आर्थिक स्थिति सुधरे और उसकी आय की वृद्धि हो। इसी के कारण खाद्य द्रव्यों की सुलभता हो सकेगी। जब स्वास्थ्यकर आहार उचित मात्रा में प्राप्त हो सकेंगे तभी जनता की जीवनीशक्ति उत्तरोत्तर वृद्धि करेगी।

गोधूम व धान्य वर्ग के पदार्थों के साथ हरे शाकों की अत्यधिक मात्रा तथा दूध की अधिकता आहार की सभी कमी को पूरा कर सकती है। यह उसी दशा में सुलभ हो सकता है जब जनता की दशा का उद्धार अधिक सफलतापूर्वक किया गया हो।

भोजन के संगठन में विभिन्न पदार्थों का समावेश उचित मात्रा में करना चाहिये जिससे प्रत्येक घटक (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा) अपनी उचित मात्रा में प्राप्त हों तथा उनके द्वारा उत्पादित शक्ति तथा ताप का जोड़ चौबीस घंटे के नष्ट होने वाले ताप के बराबर हो।

पूर्व वर्णित सिद्धान्तों को दृष्टिकोण में रख कर भारतीयों तथा इतर जाति के लोगों के लिए आहार-तालिका निर्मित करने के समय कुछ विशिष्ट बातों का ध्यान रखना चाहिए।

१. आहार-तालिका बनाने के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आहार द्रव्यों की तापशक्ति का अनुमान करने पर उसमें १० प्रतिशत शक्ति को कम कर देना चाहिए क्योंकि इतनी मात्रा मल आदि के साथ नष्ट हो जाती है।

२. आहार-तालिका निर्माण करते समय व्यक्ति विशेष का ध्यान रखना चाहिए कि अमुक व्यक्ति अधिक क्रियाशील है तथा अमुक व्यक्ति साधारण कार्य करता है। अधिक क्रियाशील व्यक्ति को १० से १५ प्रतिशत अधिक तापोत्पादक आहार देना चाहिए।

३. आहार का कम से कम ⅓ भाग जान्तवीय प्रोटीन का होना चाहिए।

४. वानस्पतिक प्रोटीन के उद्गम स्थल भिन्न-भिन्न हैं। इसके लिए विभिन्न प्रोटीनों का ग्रहण गेहूँ, आटा, चावल, दाल आदि खाद्य द्रव्यों के सभी पदार्थों से करना चाहिये।

५. वसा की आधी मात्रा जान्तवीय वसा, घी, चर्बी द्वारा पूर्ण करनी चाहिए।

६. सदैव फल, सब्जी आदि की मात्रा मांस तथा दाल की मात्रा से चौगुनी होनी चाहिए।

७. जब अधिक कार्य करने के लिये अधिक शक्ति की आवश्यकता हो तो तत्काल उसकी पूर्ति स्टार्च तथा शर्करा द्वारा हो सकती है।

८. अगर वसा की मात्रा का भलीभाँति पाचन नहीं हो सकता है तो वसा की मात्रा घटाकर ५० ग्राम रख देनी चाहिए। और इस प्रकार की कमी को कार्बोहाइड्रेट के द्वारा पूरी करनी चाहिए; किन्तु ध्यान रहे कि A जीवनीय की कमी इसमें न हो।

लवणों तथा अन्य खनिजों की मात्रा का कोई निर्धारण नहीं किया जा सकता, तथा उसकी पूर्ति भी भोजन के विभिन्न द्रव्यों द्वारा होती रहती है। जीवनीय गण भी मापित नहीं किये जा सकते, किन्तु यदि विभिन्न आहार द्रव्य अपनी स्वाभाविक

अवस्था में ग्रहण किये जाते रहें तो ये उन्हीं के द्वारा पूरे हो जाते हैं।

उचित आहार-तालिका (Balanced Diet):—एक व्यक्ति के लिये उचित आहार की मात्रा वह है जिसमें ६० से १०० ग्राम प्रोटीन, ८० से ६० ग्राम वसा का भाग, तथा ३६० से ४५० ग्राम कार्बोहाइड्रेट हो। प्रोटीन तथा वसा भाग जान्तवीय तथा वानस्पतिक दोनों प्रकार की हों और खनिज तथा जीवनीय पदार्थ भी अधिक मात्रा में प्राप्त हों। आहार में सेलुलोज़ भी काफ़ी मात्रा में होना आवश्यक है जिससे कि मलाशय से मल के निकालने में सुविधा हो।

	सार्वभौमिक तालिका औंस	भारतीय शाकाहारी औंस	भारतीय मांसाहारी औंस
धान्य	१०	२०	२०
दाल	×	३	३
कन्द	८	१२	८
शाक	८·४	१२	८
फल	५	२	२
तैल	२·६	२	१
दुग्ध	२१	८	८
मांस-मछली-अण्डा	५१	—	४
शर्करा	१·५	२	२

निम्नलिखित तालिका प्रायः उत्तरी भारत में प्रयुक्त होती है:—

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
आटा	१२	४६·८०	६·४८	२४४·२	१२२२
चावल	६	१३·८०	·५१	१३३·८	५६५

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
मांस	२	११.६४	३.६६	×	८४
दुग्ध	२०	१८.८०	२०.४०	२७.२	३६०
तेल	१	×	२८	×	२५२
घी	१.५	×	३४.६०	×	३१२
कंद शाक	८	४.४०	.३६	३१.८	१४८
शलजम	८	३.१०	.२४	१०.२	५६
आम	४	.१६	.८८	२०.८	६२
दाल	१	६.५०	.६६	१६.२	१००
	६३.५	१०५.५०	६६.४२	४८४.२	३३२१
१० प्रतिशत कमी	६.३	१०.५०	६.६४	४८.४	३२२
योग	५७.२	६५.००	८६.७८	४३५.८	२८६६

विभिन्न प्रान्तों के निर्धन निवासियों की अयुक्त आहार तालिकाः—

	मदरास	बंगाल	आसाम	उड़ीसा	सी० पी०	बम्बई
चावल	१४.२	२५	२०.४	१६	२६	१८.२
दाल	.६	.४	.६	१	१.१	१.६
शाक	.६	.२	.८	१.४	१.५	१.६
कन्द	२.५	७	४	६	३	५.७
तेल-घी	.५	.३	.३	.३	.२	१.४
मांस-मछली	१.५	.७	.७	.६	×	६

निर्धन हिन्दू ग्रहस्थों का आहार

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
चावल (पालिश)	२१.०	३७.६०	२.७०	५४७.६	२३७३
दाल	.७	४.५०	.७०	११.३	७०

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
चना	·७	४·०	·६०	१०·७	६७
तैल	·१	×	२·८०	×	२५
सब्जी	२·०	१·१०	·१०	७·७	३६
मांस-मछली	·०६	·४०	·०५	×	२
नारियल	·०५	·०८	·७२	·४	१०
	२४·६१	४७·६८	७·६७	५७८	२५८३
१० प्र० श० कमी	२·४०	४·७६	·७६	५७·८	२५८
योग	२२·२१	४२·६२	७·१८	५२०·२	२३२५

इस आहार-तालिका में प्रोटीन की मात्रा अत्यधिक कम है और जो है वह भी वानस्पतिक प्रकार की। वसा नहीं के बराबर है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा आवश्यकता से अधिक है। सम्पूर्ण आहार की तापमात्रा आवश्यक तापमात्रा से कम है। सभी जीवनीय गण, खास कर A, B प्रकारों का बिल्कुल अभाव है। इस प्रकार के आहार में खटिक, फ़ास्फ़ोरस और लौह कम हैं। ऐसे आहार का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों तथा परिवारों की जीवन शक्ति कम होती है। वह अधिक परिश्रम नहीं कर सकते तथा अजीर्ण और मन्दाग्नि सम्बन्धी विकृतियों से प्रायः पीड़ित रहते हैं।

धनी मद्रासी ग्रहस्थ का आहार

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
चावल (पालिश)	२३·०	४१·२	३·०	६००·०	२५६६
दाल	१·२	७·८	१·२	१६·४	१२०
चना	१·६	१०·८	२·५	२६·०	१८२
तैल	१·२	×	३३·६	×	३०२
घी	·४	×	६·२	×	८३

आहार द्रव्य	मात्रा	प्रोटीन	वसा	कार्बो०	ताप
दही	९.०	१२.६	९.०	७.३	१६२
सब्जी	६.०	२.०	.५	८.६	४८
नारियल	२.०	३.२	२८.६	१५.८	३३४
शर्करा	१.०	×	×	२५.०	१००
दुग्ध	७.०	६.५	७.१	९.५	१२६
	५२.७	८४.१	९४.७	७१४.५	४०५६
१० प्र० श० कमी	५.२	८.४	९.४	७१.४	४०५
योग	४७.५	७५.७	८५.३	६४३.१	३६५१

इस आहार-तालिका में जान्तवीय प्रोटीन तथा जान्तवीय वसा की मात्रा कम है और कार्बोहाइडे्ट अधिक तथा सम्मिलित ताप का परिमाण अधिक है। इस तालिका में पालिश किये हुये चावल के स्थान बिना पालिस के चावल और अधिक मात्रा में दूध व दूध के विकार और अधिक मात्रा में हरे शाक-सब्जी व फल होना आवश्यक है।

भारतीय क्रिश्चियनों व योरोपियनों की आहार-तालिकाः-

भारतीय क्रिश्चियनों की भी आहार-तालिका में, उसी प्रकार की कमी है जो साधारण तालिकाओं में है, तथा उसका सुधार भी उसी प्रकार करना आवश्यक है। योरोपियन लोग जो भारत में निवास करते हैं उनमे भी कुछ कमी देखी जाती है। जहाँ भारतीयों को आवश्यक प्रोटीन की कमी होती है वहाँ इन लोगों की आहार-तालिका में केवल प्रोटीन ही होती है। कार्बोहाइडे्ट तथा B और C विटामिन वाले पदार्थ यथा शाक-सब्जी बिल्कुल ही नहीं होते। इसका भी हानिकारक प्रभाव स्वास्थ्य पर देखा जाता है।

अंग्रेज़ बालकों में अनुभव बतलाता है कि मांस तथा

स्टार्च मिठाई, जैम आदि अधिक खाने के कारण जीवनीयगण A. B. की कमी हो जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर निम्नलिखित सुधार करना आवश्यक है :—

१. पचनशील हरे शाक-सब्जी का अधिक प्रयोग यथा टमाटर, शलज़म, गाजर, पालक आदि।

२. हरे तथा पके हुये फलों का अधिक प्रयोग यथा पपीता सेव, नींबू , सन्तरा, नारंगी।

३. मैदे की बनी हुई रोटियों के स्थान पर सूजी तथा मोटे आटे की रोटियों का प्रयोग।

४. डिब्बों के बन्द खाद्य पदार्थों की अपेक्षा ताजे खाद्य द्रव्यों का ग्रहण उचित है।

५. वस्तुओं को उनकी प्राकृतिक दशा में ग्रहण करना उनके शोधन आदि से उपयोगी है।

६. सदैव ताजा भोजन स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

७. दूध सदैव उबाल कर ग्रहण करना उचित है।

८. मट्ठा तथा छाछ का प्रयोग यदि उपलब्ध हो।

९. स्वच्छ जल का समुचित प्रयोग।

१०. भोजन खूब दाँतों से चबाकर खाना चाहिए।

उपर्युक्त नियम प्रायः सभी के लिये उपयोगी हो सकते हैं अतः इनका उपयोग सर्वसाधारण के लिये आवश्यक है किन्तु भारतीय बाल-जनता के लिये निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए :—

१. गोधूम आदि एकदली धान्यों की अधिकता।

२. दूध की मात्रा अधिक होनी चाहिए (दूध के विकार यथा दही, मक्खन, छाछ, घी आदि)।

३. कुछ द्विदली धान्य यथा दालें।

४. अण्डा, यकृत, मछली, मांस, यदि कोई धार्मिक अड़चन न हो।

५. कन्द।

६. हरे शाकों की अधिकता।

७. ताजे फल।

त्रयोदश अध्याय

आहार सम्बन्धी रोग

आहार प्राणीमात्र के जीवन की रक्षा तथा उसका पोषण करता है, कोई भी प्राणी आहार की अनुपस्थिति में अधिक काल पर्य्यन्त जीवनयापन करता रहे यह सम्भव नहीं है। इस प्रकार यह साबित होता है कि आहार का कितना महत्व है। किन्तु जीवन धारण के लिये केवल आहार अथवा आहार पदार्थों की ही आवश्यकता नहीं होती, इसमें आहार को कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त होने की आवश्यकता है जिससे उसके प्रयोग से स्वास्थ्य-लाभ तथा अन्य उचित गुण दिखाई दें। वह आवश्यक गुण हैं आहार की मात्रा तथा देश, काल व अवस्था के अनुसार आहार का होना। इस प्रकार का आहार शरीर के लिये हितकर होता है। विपरीत गुण होने से शरीर पर उसका प्रभाव रोगोत्पादक कहा जाता है।

आहार के कारण शरीर में कई प्रकार के रोग होते हैं।

१. आहार की अधिक मात्रा के कारण, यथा अजीर्ण।

२. आहार के विभिन्न घटकों के कारण, यथा अग्निमंदता तथा कोष्ठवद्धता।

३. आहार द्रव्यों के दूषित होने पर, यथा विषजन्य लक्षण, विशूचिका इत्यादि।
४. आहार द्रव्य विशिष्ट जीवाणुओं से संक्रमित होने पर, यथा उदरकृमि आदि।

अजीर्ण (Gastritis) आहार एक निश्चित मात्रा में शरीर के लिये आवश्यक है। स्वाभाविक तौर पर व्यक्ति को उतनी ही मात्रा में आहार का उपयोग करना लाभदायक है जो उसके लिये उन विशिष्ट अवस्थाओं में आवश्यक हो। मात्रा से अधिक आहार का सेवन तथा दिन में कई बार भोजन का सेवन ऐसी अवस्था पैदा करता है जिसे हम अजीर्ण कहते हैं। इस अवस्था में आवश्यकता से अधिक मात्रा में आहार के प्रयोग करने पर आमाशय तथा आंत्रों में उसका उचित पाक नहीं हो पाता। अपचित पदार्थ अन्न प्रणाली में सड़ता है और अनेक प्रकार के लक्षण पैदा करता है। भूख का न लगना, कभी उदर में भारीपन, पीड़ा, आलस्य आदि अनेक लक्षण उपस्थित होते हैं। कभी २ तो उपरोक्त लक्षणों के साथ वमन तथा विरेचन (विशूचिका) की अवस्था तक प्रारम्भ हो जाती है। इसका स्वरूप लक्षणों की भीषणता के कारण साधारण तथा गंभीर दोनों ही हो सकते हैं। अजीर्ण की अवस्था उत्पन्न होने पर व्यक्ति को लंघन सर्वश्रेष्ठ उपचार होगा, तथा साथ ही पाचक औषधियों का, यथा सोडा, नींबू, काला नमक, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सैंधव नमक का चूर्ण, लवणभास्कर, आमलक्यादि चूर्ण, संजीवनी वटी, गंधकवटी, हिंगु वटी, का उपयोग लाभदायक होगा। अजीर्ण की अवस्था में पानी का उपयोग अधिक मात्रा में करना चाहिए।

कोष्ठवद्धता (constipation)—भारतवर्ष के निवासियों के आहार में ऐसे पदार्थों की आवश्यकता है जो शाक तथा तत्सम

वर्ग वाले हों। प्रोटीन तथा मांस जातीय पदार्थों की कम आवश्यकता है। आजकल प्रोटीन का विभिन्न स्वरूपों में अधिक प्रयोग होता है, और यही इसका एक प्रधान कारण है। गेहूँ का आटा भी, जो आजकल प्रयोग किया जाता है, वह मिलों द्वारा पिसा हुआ होता है। यह अधिक महीन होता है। इसका कुछ अंश तो शोषित होता है और कुछ अंश आँतों में चिपक-सा जाता है। आहार में हरे शाकों ऐसे घटकों की कमी होती है जो प्रायः इस प्रकार के चिपके हुये अंशों को बाहर निकाल नहीं पाते। इसी प्रकार की अवस्था कुछ काल तक रहने पर कोष्ठवद्धता कही जाती है। ऐसी अवस्था में मल की रुकावट हो जाती है। मल आंत्रों में स्थित हो जाता है। मल के रुकने से शरीर में अनेक विषों का शोषण होता है तथा अनेक प्रकार की विकृतियाँ पैदा होती हैं। यकृत का कार्य शिथिल हो जाता है। उदर के अनेक अन्य रोग भी उपद्रव रूप में पैदा हो जाते हैं। इस व्याधि को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय आहार परिवर्तन ही है। प्रोटीन जातीय पदार्थों की मात्रा आहार में कम करके उनके स्थान में शाक-सब्ज़ी (Vegetables) को बढ़ा देना चाहिए। साथ ही यकृत के उत्तेजनशील पदार्थों—यथा चिरायता, चित्रक की जड़, त्रिफला आदि का प्रयोग लाभदायक होता है।

अग्निमांद्य (Dyspepsia)—यह विकार भी मनुष्यों में गरिष्ट अन्नों का अधिक मात्रा में तथा लगातार अधिक काल तक सेवन द्वारा होता है। गरिष्ट अन्नों के अधिक सेवन से पाचक रस क्रमशः कमजोर पड़ जाते हैं और उनका उचित मात्रा में उत्पादन भी नहीं होता है। इससे आगे चलकर के अतिसार, प्रवाहिका आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

ऐसी अवस्था में रोगी को चाहिए कि वह ऐसे आहार पदार्थों, यथा दालों में मूँग, जव की रोटी, पुराना चावल, लौकी, तरोई,

पालक, पपीता आदि शाक का भोजन करे तथा अग्निवर्धक अन्य औषधियों का भी प्रयोग कर सकता है।

विशूचिका (Cholera)—दूषित तथा अधिक मात्रा में भोजन के कारण इस रोग का प्रादुर्भाव होता है। यह रोग अधिकतर महामारी के रूप में मेलों तथा अन्य ऐसे स्थानों में जहाँ पर अधिक मात्रा में जनता एकत्र होती है तथा उचित मात्रा में सफ़ाई की व्यवस्था का अभाव होता है—होता है। यह ग्रीष्म काल में अधिक होता है।

इसका आक्रमण होने पर रोगी को वमन तथा विरेचन होना प्रारम्भ होते हैं। पेशाब बन्द हो जाता है, वमन विरेचनों के कारण रोगी शिथिल हो जाता है तथा अधिक क्षीण होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। रोग की तीव्रता के अनुसार इसके कई विभेद किये गये हैं। साधारण आक्रमण होने पर पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है किन्तु तीव्र आक्रमण तथा तीव्रतर अवस्था में रोग असाध्य होता है। रोगी द्वारा उच्छिष्ट वमन विरेचन द्वारा इसका प्रसार होता है। वमन तथा विरेचन पर मक्खियाँ बैठती हैं फिर वही मक्खियाँ खाद्य पदार्थों पर जाती हैं। इस प्रकार वे रोग के जीवाणु या विष का प्रसार करती हैं।

रोग के प्रारम्भ होने पर इसके प्रसार के रोकने का प्रबन्ध करना चाहिए। रोगी के वमन विरेचन को तत्काल ही अग्निदग्ध करना तथा सन्दिग्ध स्थानों पर चूना प्रसारित करना ठीक है। कुओं व तालाबों में जन्तुघ्न पदार्थों को डालना चाहिए। भोजन में नींबू का प्रयोग तथा आहार सुपाच्य और कम मात्रा में लाभदायक है। साथ-ही-साथ अन्य यकृत को उत्तेजित करनेवाली वस्तुयें भी लाभदायक होंगी।

आहार विष (Ptomain Poisoning)—सड़े हुये आहार द्रव्यों के खाने से अथवा अधिक मात्रा में आहार के खाने पर आमाशय में आहार द्रव्यों के सड़ने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसमें भी प्रायः विशूचिका के जैसे लक्षण तथा वमन विरेचन का होना, उदर शूल, शक्ति क्षीणता आदि। ऐसी अवस्था में रोगी की चिकित्सा विशूचिका के सिद्धान्तानुसार करनी चाहिए।

उदरकृमि—उदरकृमि एक भयंकर रोग है, जिसका प्रधान कारण कुछ कृमि होते हैं जो अन्नप्रणाली में पाये जाते हैं। इन कृमियों का संक्रमण कृमियों द्वारा दूषित आहार द्रव्यों से होता है। यह कई प्रकार के होते हैं तथा इनके संक्रमण के लिये विभिन्न खाद्य द्रव्य होते हैं।

१. मांसाहार के द्वारा संक्रमण—यकृत कृमि, टीनिया सोलियम, टीनिया सैजिनेटा।

२. शाकाहार के द्वारा संक्रमण—तन्तु कृमि, गंडूपद कृमि (Round worms)

यकृत कृमि—इनकी लम्बाई १ इंच की होती है। यह प्रधानतः यकृत में पाये जाते हैं, तथा मनुष्यों में संक्रमण भेड़, बकरी के यकृत द्वारा होता है—कारण कि भेड़ बकरियाँ इन कृमियों के अण्डों से दूषित घास को खाती हैं, उन अण्डों से निकले हुये कृमि जानवर के यकृत में स्थिर रहते हैं। जब कभी इस प्रकार के दूषित यकृत भाग का सेवन व्यक्ति करता है तो उसका संक्रमण होता है।

टीनिया सोलियम—यकृत कृमि की भाँति इन कृमियों का प्रसार मनुष्यों में सुअर के मांस द्वारा होता है। और इस

लिये यह प्रधानतः उन्हीं लोगों में प्राप्त होता है जो सुअर मांस का प्रयोग करते हैं।

टीनिया सैजिनेटा—टिनिया सोलियम के समान इस कृमि का प्रसार गो-मांस द्वारा होता है, और प्रधानतः उन्हीं लोगों में प्राप्त होता है जो गाय मांस का प्रयोग आहार में करते हैं।

तन्तु कृमि (Thread worm)—यह श्वेत वर्ण के एक इंच लम्बे तागे के समान होते हैं। इन कृमियों के अण्डे मल द्वारा उत्सर्जित होते हैं तथा यही अण्डे हरे शाक-सब्जी आदि में चिपक जाते हैं और उन्हीं शाक़-सब्जी के प्रयोग से मनुष्यों में संक्रमण होता है। प्रधानतः यह बालकों में अधिक संक्रामक हैं। कारण कि बालक प्रायः शाकों को बिना भली भाँति साफ किये तथा पकाये खा जाते हैं। और इसीलिये आसानी से कृमि आमाशय में प्रवेश पाकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। युवा तथा वृद्ध व्यक्ति शाक-सब्जी को भली भाँति पकाकर प्रयोग करते हैं। पकाने से ताप के कारण अण्डे नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उनमें संक्रमण अधिक नहीं होता है।

गण्डूपद कृमि (Round worm)—यह कृमि केंचुआ (Earthworm) की भाँति गोल तथा १०-१२ इंच लम्बे होते हैं। इनके भी अण्डे होते हैं। अण्डे हरे शाक-सब्जियों में चिपके रहते हैं, और इसी दूषित शाक आदि के कारण व्यक्तियों के शरीर में प्रवेश करते हैं। आमाशय में आने पर अम्ल के कारण अण्डे के ऊपर का आवरण नष्ट हो जाता है और कृमि अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है तथा अनेक आशयों में भ्रमण करता रहता है।

पूर्व विवरण द्वारा भली भाँति साबित हो जाता है कि अनेक ऐसे रोग हैं जिनका कारण आहार द्रव्य, आहार मात्रा, तथा आहार स्वरूप और आहार अवस्था हैं। अतः मनुष्य को अपने स्वास्थ्य की रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए और इसके रक्षार्थ उसे ऐसे आहार को ग्रहण करना चाहिये जो वास्तव में लाभदायक हो। आवश्यक आहार द्रव्यों को उचित मात्रा में संगठित करना ही एक बुद्धिमानी का ज्वलंत प्रमाण है। केवल एक प्रकार का ही आहार स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से उपयोगी नहीं है। मांस जातीय पदार्थ (प्रोटीन), शर्करा जातीय पदार्थ (कार्बो-हाइड्रेट), नमक, सभी अपने आवश्यक परिमाण में होना ही चाहिए। और इसी का संगठित करना स्वास्थ्य-रक्षा के लिये उचित पग उठाना है।

इस विषय में विद्यार्थियों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहिए तथा उन्हें इस विषय की उचित शिक्षा तथा अध्यापकों द्वारा उपयोगी मत प्रदान किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों का यह एक स्वर्ण अवसर होता है। शरीर की वृद्धि का यह समय होता है। इस काल में यदि विद्यार्थी अपने स्वास्थ्य को उचित प्रकार से स्थापित कर सकें, तो उनका भावी जीवन उज्ज्वल हो जाता है। विद्यार्थियों को चाहिए कि इस काल में अपने खान-पान के लिये अधिक सतर्क रहें। उन्हें सदैव ऐसी वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए जो उनके स्वास्थ्य के लिये हितकर हों। उनके माता-पिताओं का भी यही ध्येय होना चाहिए कि बालक के लिये ऐसे द्रव्य संग्रह किये जायँ जो उसके शारीरिक विकास के लिये आवश्यक हैं। प्रत्येक विद्यार्थी प्रतिदिन अपने संरक्षकों से कुछ द्रव्य स्कूल में व्यय करने के लिये पाता है। यद्यपि वह इन पैसों के व्यय करने के लिये स्वतंत्र है फिर भी उसे ध्यान रखना चाहिये कि वह इसका अप-

व्यय न करे—कचालू-मटर आदि में उसे खर्च नहीं करना चाहिए।

स्कूल टाइम में बालकों को क्षुधा लगती है और उस क्षुधा को शान्त करने के लिये स्कूल में ताजे फल आदि अवश्य प्राप्त होंगे, जो कचालू, मटर आदि की अपेक्षा शरीर को हानि न पहुँचा कर पुष्ट करेंगे और क्षुधा की शांति भी हो जायगी। मिठाई का प्रयोग भी अच्छा नहीं है। इसका अधिक मात्रा में प्रयोग शरीर के लिये हानिकारक होता है। इससे मधुमेह रोग होने की अधिक संभावना रहती है।

❀समाप्त❀
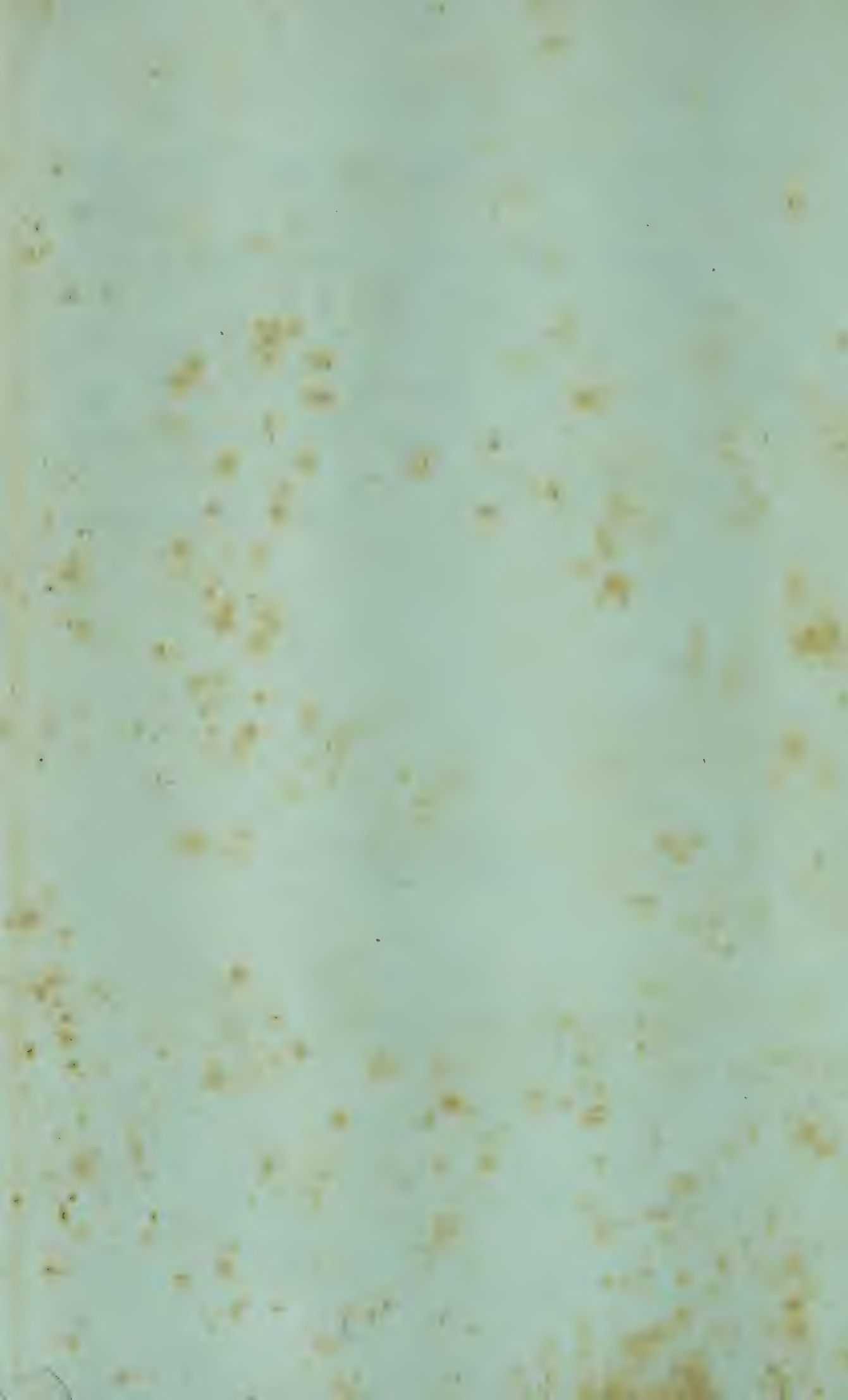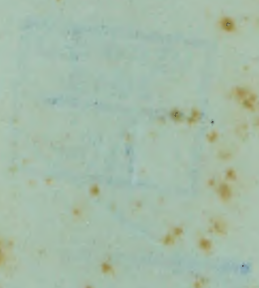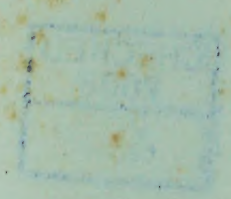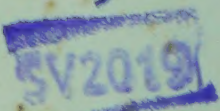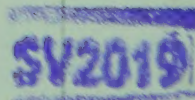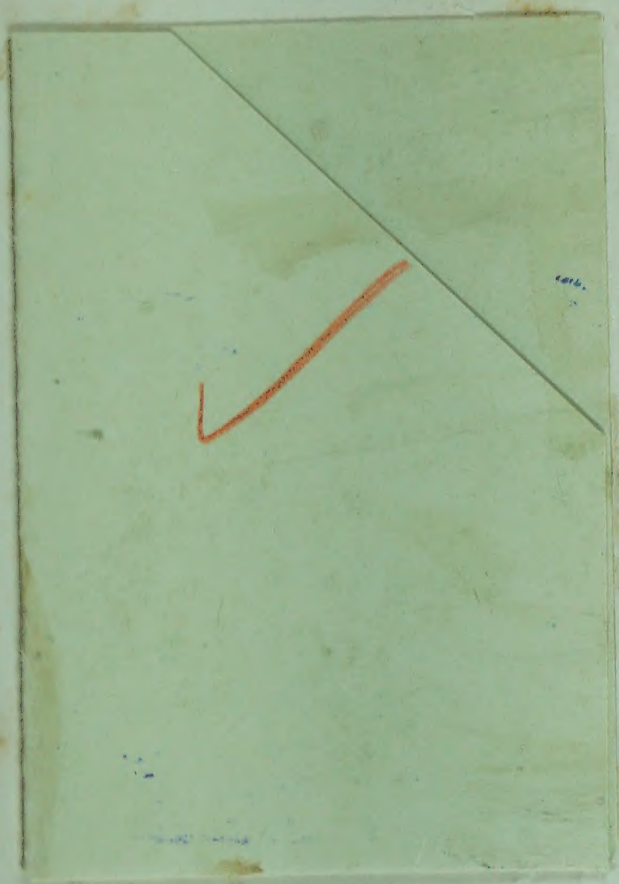
विमल बंकिम सीरीज़

(साहित्य-सम्राट् महर्षि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायकृत)

कमलाकांत का पोथा	२)	लोक-रहस्य	२)
आनन्दमठ	२)	विषवृक्ष	२)
कपालकुण्डला	२)	राधारानी	॥)
कृष्णकान्त का वसीयतनामा	२)	युगलांगुरीय	॥)
राजसिंह	२)	देवी चौधरानी	२)
चन्द्रशेखर	२)	बंगशार्दूल सीताराम	२)
दुर्गेशनन्दिनी	२)	रजनी	२)
इन्दिरा	२)	मृणालिनी	२)

बाल प्रभाकर सीरीज़

चण्ट चौकड़ी	।–)	हजरत अबूबकर	।=)
डायन राजारानी	।–)	हजरत उस्मान	।=)
महाराज कपालफोड़	।–)	हजरत उमर	।=)
मायावी सपेरा	।–)	हजरत अली	।=)

टामकाका की कुटिया (छात्र संस्करण) १॥)

रामायण कृत्तिवास (आदि काण्ड) हिन्दी पद्यानुवाद, बंगला मूल सहित, डाक खर्च सहित ६)

कुरानशरीफ़ (हिन्दी) ८)

भारतीय कृषिविज्ञान सम्पूर्ण तीन खण्डों में ७॥)

हमारा भोजन (यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत) १॥)

वैज्ञानिक पशुपालन व चिकित्सा ३)

अन्नपूर्णा पाकप्रणाली ३)

श्री प्रभाकर साहित्यालोक

२३, श्रीराम रोड, लखनऊ।